पंजीयन संख्या : 68939/98

ज्ञान तत्व

सत्यता एवं निष्पक्षता का निर्भीक पाक्षिक

SEP 2025

अंक - 16

478

1- अनावश्यक कानून अव्यवस्था के आधार 3

संविधान बनाते समय हमारे साम्यवाद-प्रभावित नेताओं ने 'स्वतंत्रता' शब्द को कमज़ोर करके 'समानता' शब्द डाल दिया। समानता का व्यवहार करना दूसरों का कर्तव्य हो सकता है, किंतु यह आपका अधिकार नहीं है

न्याय और कानून के बीच बढ़ता फर्क 5

उत्तराधिकार का औचित्य और कानून 7

प्रकाशन की तिथि - 1-09-2025 पोस्ट की तिथि - 16-09-2025

सिंहावलोकन

8 **हरिजन आदिवासी कानून**

10 **न्याय बनाम कानून: चुनाव आयोग की सच्चाई**

11 **सुप्रीम कोर्ट, पशु अधिकार और समाज की वास्तविकता**

15 **गांधी हत्या: इतिहास के छिपे सच और नेताओं की भूमिका**

साथियों की कलम से -

20 **ज्ञान यज्ञ परिवार के प्रकाश स्तंभ 'आदरणीय नरेंद्र सिंह सिरोही'**

21 **ज़ूम कार्यक्रम का सारांश**

पत्र व्यवहार का पता

बजरंग लाल अग्रवाल पोस्ट बाक्स 15, रायपुर (छ.ग.) 492021

website : margdarshak.info

प्रकाशक, संपादक व स्वामी - बजरंगलाल

9617079344

mail : Support@margdarshak.info

मुख्य कार्यालय-
ज्ञानयज्ञ परिवार आश्रम
रामानुजगंज छत्तीसगढ़ 497220
8318621282, 9630766001

लोक स्वराज अभियान
505 कृष्णा शिप्रा अजूरा अपार्टमेंट कौशांबी
गाजियाबाद 201012
9325683604, 9012432074

प्रधान संपादक
बजरंग लाल अग्रवाल
(बजरंग मुनि)

संपादक मण्डल
नरेन्द्र सिंह
विपिन तिवारी
विपुल आदर्श

सहयोगी संपादक
ज्ञानेन्द्र आर्य

सदस्यता नियमन
संजय गुप्ता 872669477
कुशल दुबे 7999934238

सज्जा
लाल बाबू रवि

वितरण एवं मुद्रण सहयोग
रबीन्द्र विश्वास

1- अनावश्यक कानून अव्यवस्था के आधार

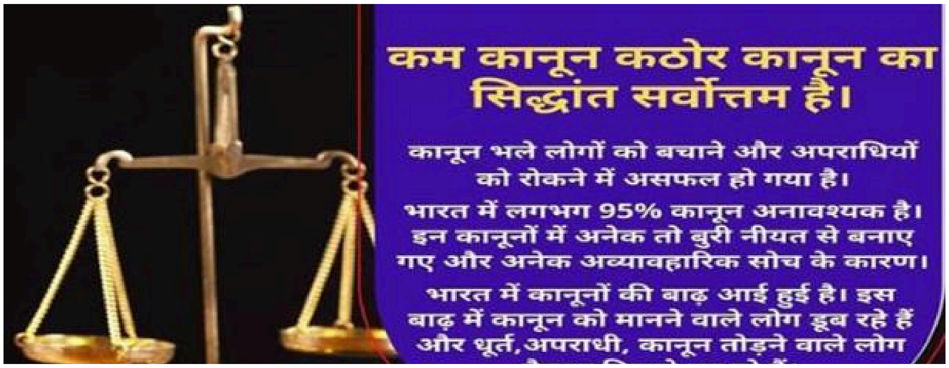

बजरंग मुनि
प्रधान संपादक

आदर्श लोकतंत्र में लोक मालिक और तंत्र सहायक होता है। तंत्र कुछ क़ानून बनाता है और प्रत्येक नागरिक उस क़ानून को मानने के लिए बाध्य होता है। क़ानून बनाने में प्रत्येक नागरिक की अप्रत्यक्ष भूमिका होती है किंतु क़ानून का पालन करने में उसकी कोई भूमिका नहीं होती। क़ानून का उसे पालन करना ही होगा। क़ानून का पालन कराने के लिए व्यक्ति को मजबूर करने वाली इकाई को ही कार्यपालिका तथा क़ानून बनाने वाली इकाई को विधायिका कहते हैं। क़ानून कभी मार्गदर्शक नहीं होते बल्कि बाध्यकारी होते हैं। क़ानून का पालन करने के अतिरिक्त नागरिक के पास कोई विकल्प नहीं हो सकता।

तानाशाही में कार्यपालिका की शक्ति असीम होती है क्योंकि तानाशाही में कार्यपालिका ही विधायिका भी है और न्यायपालिका भी। किंतु लोकतंत्र में कार्यपालिका स्वयं भी किसी संविधान तथा कानून से बंधी होती है, इसलिए उसकी शक्ति बहुत कम हो जाती है। एक आँकलन के अनुसार कार्यपालिका 2% से अधिक नियंत्रण करने की क्षमता नहीं रखती। सुरक्षा और न्याय कार्यपालिका का दायित्व है तथा कानून का पालन कराना उसका कर्तव्य है। यदि विधायिका कानून अधिक बनाती है और कार्यपालिका उनका पालन नहीं करा पाती तो ऐसे समय को अव्यवस्था कहते हैं। इसलिए यह सिद्धांत माना गया है कि "कम कानून, कठोर कानून" का सिद्धांत सर्वोत्तम है। विधायिका नासमझी के कारण इस सिद्धांत को भूल गई। परिणाम यह हुआ कि कार्यपालिका और न्यायपालिका ओवरलोड हो गए। कार्यपालिका और न्यायपालिका से भी भूल हुई कि वे दायित्व और कर्तव्य का अंतर नहीं समझ सके। विधायिका की गलती और न्यायपालिका-कार्यपालिका की भूल का परिणाम हुआ कि भारत में अपराध बढ़ते गए और हम कानूनों का पालन कराने पर ही ज़ोर देते रहे। अंत में हमें मिली अव्यवस्था। इस अव्यवस्था का मुख्य आधार बना नेहरू-अंबेडकर द्वारा बनाया गया अव्यावहारिक और अदूरदर्शी संविधान। नेहरू - अंबेडकर तानाशाही प्रवृत्ति के थे, इसलिए उन्होंने ऐसा अव्यावहारिक संविधान बनाया जो अव्यवस्था का आधार बना। 70 वर्ष बाद हम देख रहे हैं कि भारत में कानूनों की बाढ़ आ गई है। इस बाढ़ में कानून-आश्रित अच्छे लोग डूब रहे हैं और धूर्त, अपराधी, कानून तोड़ने वाले लोग तैरकर किनारे जा रहे हैं। कानून भले लोगों को बचाने और अपराधियों को रोकने में असफल हो गया है। यदि हम भारत की समीक्षा करें तो भारत में लगभग 95% क़ानून अनावश्यक हैं। इन क़ानूनों में अनेक तो बुरी नीयत से बनाए गए और अनेक अव्यावहारिक सोच के कारण। इन सब क़ानूनों की हम न ही चर्चा करना चाहते हैं और न ही कर सकते हैं, किंतु हम आपसे पाँच-सात क़ानून नमूने के रूप में चर्चा करेंगे। हिंदू कोड बिल नेहरू-अंबेडकर की बुरी नीयत का सर्वाधिक घातक क़ानून है। नेहरू के मन में इस्लाम के प्रति अधिक आकर्षण था तो अंबेडकर के मन में हिंदुत्व के प्रति आक्रोश। दोनों ने मिलकर हिंदू कोड बिल इस तरह बनाया कि हिंदुओं की संयुक्त परिवार व्यवस्था महिला-पुरुष के बीच टकराव में फँसकर छिन्न-भिन्न हो जाए और हिंदुओं की आबादी मुसलमानों की तुलना में घटती चली जाए। इन्हें हिंदू-मुसलमान का भेद छोड़कर समान नागरिक संहिता लानी चाहिए थी, किंतु इन्होंने हिंदुओं की स्वतंत्रता पर नियंत्रण का क़ानून बना दिया और मुसलमानों को विशेष अधिकार दे दिए। जबकि भारत में मुसलमानों का पुराना अनुभव बहुत खराब रहा है। गुलामी काल में इनके विस्तारवादी अत्याचारों की सारी कहानियाँ इन दोनों को मालूम थीं। अंग्रेज़ी शासन काल में भी इन्होंने न कभी गांधी की बात मानी, न कभी नेहरू-अंबेडकर की। बहुत निर्दयतापूर्वक इन्होंने देश के टुकड़े करा दिए। इन सब अनुभवों के बाद भी सिर्फ़ वोट की लालच में या अपनी व्यक्तिगत मानसिकता के आधार पर हिंदू-मुसलमान के बीच इतना भेदभाव ठीक नहीं था। हिंदू कोड बिल और अल्पसंख्यक तुष्टीकरण के नाम से भारत में जो प्रयोग हुआ वह फ़ोड़ा अब पककर फिर से गृहयुद्ध की धमकी देने का प्रयास कर रहा है।

दल-बदल क़ानून भी एक ऐसा ही घातक क़ानून है। नेहरू-अंबेडकर ने हमारी संसद को अधिकतम लोकतांत्रिक स्वरूप देने की कोशिश की। सांसदों को प्रत्यक्ष रूप से जन-प्रतिनिधि और अप्रत्यक्ष रूप से दल के रूप में स्वीकार किया, किंतु राजीव गांधी ने ग़लत लोगों की सलाह पर सारे लोकतांत्रिक ढाँचे को तहस-नहस करते हुए सांसदों को पूरी तरह दल-प्रतिनिधि बना दिया। अब हमारे जन-प्रतिनिधि चुनाव तक जन-प्रतिनिधि और चुनाव के बाद ग़ुलाम से भी अधिक हैसियत नहीं रखते। जिस प्रकार हमारे जन-प्रतिनिधि होटलों में धक्के खा रहे हैं और संसद में भी रोबोटों की तरह हाथ उठाने को बाध्य हैं, उससे बहुत शर्म महसूस होती है। दल-बदल क़ानून के कारण विकेंद्रित भ्रष्टाचार पूरी तरह केंद्रित हो गया है। अब पूरी संसदीय प्रणाली 4-5 दल-प्रमुखों की कैद में चली गई है। अब वे लोकतंत्र के साथ सामूहिक सौदेबाज़ी करने का अधिकार रखते हैं। दलों में आंतरिक लोकतंत्र समाप्त होने का मुख्य आधार बना यही दल-बदल क़ानून।

साम्यवादी विचारधारा दुनिया की सबसे अधिक ख़तरनाक विचारधारा है। साम्यवाद निर्लज्जता से वर्ग-संघर्ष को अपना आधार मानता है। स्वतंत्रता-संघर्ष में भी साम्यवादियों की कोई भूमिका नहीं रही। लेकिन वैचारिक धरातल पर नेहरू साम्यवाद से अधिक प्रभावित थे। संविधान बनाते समय हमारे साम्यवाद-प्रभावित नेताओं ने 'स्वतंत्रता' शब्द को कमज़ोर करके 'समानता' शब्द डाल दिया। समानता का व्यवहार करना दूसरों का कर्तव्य हो सकता है, किंतु यह आपका अधिकार नहीं है। असीम स्वतंत्रता व्यक्ति का मौलिक अधिकार होती है। हमारे नासमझ नेताओं ने समानता के नाम पर पूरी स्वतंत्रता की ऐसी-तैसी कर दी। जब असमानता प्राकृतिक है और दुनिया के कोई भी दो व्यक्ति कभी पूरी तरह समान नहीं होते, तब समानता संविधान का भाग क्यों? इस 'समानता' शब्द ने राज्य को असीम शक्ति प्रदान कर दी। राज्य समानता के नाम पर बिल्लियों के बीच बंदर की भूमिका में बिचौलिया बनकर हमारी सारी स्वतंत्रता में कटौती करने में सफल हो गया।

इसी प्रकार हमारी समाज-व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करने के लिए आरक्षण का क़ानून बना। आरक्षण श्रम-शोषण के उद्देश्य से अंबेडकर के दिमाग़ की उपज था। अंबेडकर के मन में बुद्धिजीवियों के प्रति विशेष आकर्षण था। उन्हें लगा कि स्वतंत्रता-पूर्व का सारा माल-मलाई सवर्ण बुद्धिजीवी ही खा रहे हैं। उन्होंने अवर्ण बुद्धिजीवियों को आरक्षण द्वारा उस माल-मलाई में हिस्सा दिलाकर समझौता करा दिया। अब बेचारे श्रमजीवी, आदिवासी, हरिजन जाति के नाम पर संतुष्ट हैं और बुद्धिजीवी सवर्ण-अवर्ण मिलकर लगातार श्रम-शोषण के नए-नए क़ानून बनाते रहते हैं। भारत की विकास-दर का औसत 7% है, किंतु 70 वर्षों में 33% श्रमजीवियों को लाभ का वार्षिक औसत 1%, 33% बुद्धिजीवियों को 7% तथा 33% पूंजीपतियों को 14% प्राप्त होता है।

नेहरू-अंबेडकर की जोड़ी अच्छी तरह जानती थी कि राज्य-सशक्तिकरण के लोकतांत्रिक प्रयत्नों में सबसे अच्छी भूमिका वर्ग-निर्माण और वर्ग-संघर्ष की होती है। भारत की कुल आबादी में महिलाओं की भूमिका लगभग आधी है। जब तक महिला-पुरुष का टकराव नहीं होता, तब तक समाज कमज़ोर नहीं हो सकता। परिवार-व्यवस्था को कमज़ोर करने का एकमात्र मार्ग है महिला-पुरुष वर्ग-भेद। पश्चिम में महिला-पुरुष को अलग-अलग वर्ग माना जाता है, किंतु भारत में सशक्त परिवार-व्यवस्था होने से दोनों अलग वर्ग हो ही नहीं सकते। इसलिए दोनों ने एक राय होकर परिवार और गाँव-व्यवस्था को संवैधानिक व्यवस्था से बाहर करके धर्म अर्थात संप्रदाय तथा जाति को संवैधानिक मान्यता दे दी। परिणाम हुआ कि राज्य को परिवार-व्यवस्था में घुसकर तोड़फोड़ करने की संवैधानिक स्वतंत्रता मिल गई। इन्होंने महिला-सशक्तिकरण का एक नया नारा दिया। इन्होंने दहेज, बाल-विवाह, बाल-श्रम-निषेध, सती-प्रथा-उन्मूलन जैसे अनेक अनावश्यक क़ानून बनाकर महिलाओं को पुरुषों के विरुद्ध खड़ा करने की भरपूर कोशिश की।

मैंने सैकड़ों अनावश्यक कानूनो में से पांच उदाहरण आपके सामने रखे। अब नरेंद्र मोदी की सरकार आने के बाद भी सभी पांच क़ानून उसी तरह जारी है। 70 वर्षों तक प्रचार माध्यमों के द्वारा आम जनता को यह बात इस तरह समझा दी गई है कि ये कानून जनहित के हैं जबकि ये सभी पांचों कानून समाज के लिए घातक है। यदि आज इन कानूनों के विरोध में कोई चर्चा करें तो प्रारंभिक स्तर पर ही हर आदमी राजनेताओं द्वारा प्रचारित तर्क तत्काल दुहरा देता है और चर्चा आगे नहीं बढ़ पाती। फिर भी हम अनंत काल तक अव्यवस्था नहीं झेल सकते। हमें अव्यवस्था से मुक्ति पानी होगी। इसके लिए कार्यपालिका और न्यायपालिका का बोझ कम करना होगा। इसके लिए अनावश्यक कानून समाप्त करने होंगे और यह कार्य तभी संभव है जब हम इस प्रकार के सैकड़ों अनावश्यक कानूनों के समर्थन में प्रचारित तर्कों के विरुद्ध जनजागरण करें। हमें विचार मंथन से शुरुआत करनी होगी तभी आगे चलकर हम भारत में व्यापक प्रशासनिक अव्यवस्था से निपट सकते हैं।

2- न्याय और कानून के बीच बढ़ता फर्क

संपूर्ण भारत में सोहराबुद्दीन फ़र्ज़ी मुठभेड़ ने एक नई बहस छेड़ दी है। सोहराबुद्दीन एक घोषित अपराधी था। उस पर कई राज्य सरकारों द्वारा इनाम घोषित था। उसके पास से पूर्व में गंभीर हथियार थोक में ज़ब्त हुए थे। सबूत के अभाव में वह सज़ा नहीं पा सका। गुजरात पुलिस ने गृहराज्य मंत्री अमित शाह का प्रत्यक्ष तथा मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी का अप्रत्यक्ष समर्थन पाकर सोहराबुद्दीन को फ़र्ज़ी मुठभेड़ में मार डाला। उसकी पत्नी कौसर बी यह भेद खोल सकती थी, इसलिए उसकी भी हत्या कर दी गई। तुलसी, जो सोहराबुद्दीन का सहायक था, वह भी फ़र्ज़ी मुठभेड़ में मार दिया गया। अमित शाह को भी संभवतः राजस्थान के कुछ व्यापारियों ने इस कार्य के लिए बड़ी रकम का ठेका दिया था। अमित शाह का भी कोई बहुत उज्ज्वल रिकॉर्ड नहीं रहा है।

एक सीधा-सा सिद्धांत है कि न्याय और व्यवस्था के लिए क़ानून बनते हैं। यदि न्याय और क़ानून दो विपरीत धाराओं पर चलने लगें तो न्याय का स्थान क़ानून से ऊपर होता है, क्योंकि न्याय के लिए क़ानून बनते हैं, क़ानून के लिए न्याय नहीं। अपराधी को दंड देना न्याय है और न्याय के लिए किसी प्रक्रिया का पालन क़ानून है। यदि क़ानून न्याय देने में पर्याप्त भूमिका न निभा सके तो क़ानून की समीक्षा और संशोधन हो सकता है, किन्तु न्याय की काट-छाँट या संशोधन संभव नहीं। यदि हम सोहराबुद्दीन, तुलसी और कौसर बी की समीक्षा करें तो-

- सोहराबुद्दीन एक अपराधी था, यह निर्विवाद है।
- तुलसी उसके अपराध कार्य का सहयोगी था, यह भी निर्विवाद है।
- कौसर बी सोहराबुद्दीन की पत्नी थी, फ़र्ज़ी मुठभेड़ को छिपाने के क्रम में मारी गई।

यदि सोहराबुद्दीन के साथ न्याय हुआ होता तो न तो वह खुला घूमता और न ही फ़र्ज़ी मुठभेड़ की नौबत आती। किसी अपराधी का निर्दोष छूटना स्पष्ट रूप से अपराध है, और किसी अपराधी को फ़र्ज़ी मुठभेड़ में मारना अपराध न होकर केवल गैर-क़ानूनी कार्य मात्र है। अपराध और गैर-क़ानूनी कार्य में आसमान-ज़मीन का फ़र्क होता है। यदि हम विस्तृत समीक्षा करें तो पाएँगे कि यदि कोई अपराधी, जिसे अपराध के बदले में मृत्युदंड होना चाहिए, वह बेजुर्म रिहा हो जाता है तो यह पूरी तरह आपराधिक कार्य है, भले ही वह क़ानून-सम्मत हो। और ऐसा अपराध करने वाले को दंडित करने का हमारे पास कोई क़ानूनी आधार नहीं होता। दूसरी ओर, ऐसे निर्दोष घोषित अपराधी को फ़र्ज़ी रूप में दंडित या हत्या कर दी जाए तो ऐसा दंड अपराध न होकर गैर-क़ानूनी कार्य माना जाना चाहिए। ऐसी फ़र्ज़ी हत्या के लिए हत्यारे को क़ानून दंडित करेगा, जबकि समाज प्रशंसा करेगा। ऐसी स्थिति बहुत घातक होती है।

भागलपुर आँख फोड़ कांड को मैंने ख़ूब समझा है। हमने सच्चाई को देखकर भी अनदेखा किया। कुछ नामी अपराधी गवाही के अभाव में बार-बार न्यायालय से निर्दोष सिद्ध होकर पुनः-पुनः अपराध करते रहे। अपराध फ़ाँसी के दंड लायक नहीं थे। पुलिस और भीड़ ने उन्हें पकड़-पकड़कर अंधा बना दिया। देश भर में हल्ला हुआ। क़ानून तोड़ने वालों को दंड मिला, किन्तु अपराधियों को निरपराध घोषित करने वालों को न कभी अपराधी कहा गया और न ही उस पर कभी विचार हुआ। भागलपुर की पूरी जनता ने संघर्ष किया, किन्तु न राजनेताओं ने कभी समीक्षा की और न ही न्यायपालिका ने। यदि भागलपुर आँख फोड़ कांड की ठीक से समीक्षा करके न्याय और क़ानून के बीच की दूरी को कम कर दिया जाता तो सोहराबुद्दीन कब का जेल के अंदर होता। न वह इस तरह बार-बार अपराध कर पाता और न ही फ़र्ज़ी मुठभेड़ की ज़रूरत होती।

दुनिया जानती है कि पंजाब में आतंकवाद अनियंत्रित हुआ। सारी कोशिशें असफल हुईं। ऐसा लगा कि अब पंजाब में गृहयुद्ध शुरू हो जाएगा। तब भारत सरकार ने ग़ैर-क़ानूनी तरीक़े से पंजाब में शांति स्थापित करने में सफलता पाई। बड़ी संख्या में आतंकवादियों को चुन-चुनकर फ़र्ज़ी मुठभेड़ों में मारा गया। एक बार तो असम और बंगाल में भी ऐसा प्रयत्न हो चुका है।

मेरा जन्म-स्थान और कार्य-क्षेत्र नक्सलवाद का रणक्षेत्र बन रहा था। यहाँ के कुछ लोगों ने प्रमुख नक्सलवादी नेताओं को एक-एक कर पकड़वाया। नक्सलवादी आतंक के कारण गवाहों ने गवाही नहीं दी। सभी को न्यायपालिका ने निर्दोष का सर्टिफ़िकेट देकर बाइज़्ज़त बरी कर दिया। जेल से छूटते ही उन्होंने कुहराम मचाया। पकड़वाने वालों की हत्याएँ होने लगीं। क्षेत्र के लोगों ने पुलिस से ग़ैर-क़ानूनी सुरक्षा की गुहार लगाई। पुलिस ने नागरिकों से माँग की कि उनकी मानवाधिकारवादियों से सुरक्षा की गारंटी हो। नागरिकों द्वारा पुलिस को सुरक्षा की गारंटी मिलने के बाद की गई पुलिसिया फ़र्ज़ी मुठभेड़ों ने पूरे क्षेत्र को शांत कर दिया। आज रामानुजगंज क्षेत्र भारत का एकमात्र ऐसा क्षेत्र है जहाँ नक्सलवाद घट रहा है, अन्यथा पूरे भारत में तो

लगातार बढ़ रहा है। इसके पीछे का छिपा हुआ इतिहास यही है कि यहाँ जब क़ानून ही न्याय और सुरक्षा में बाधक बनने लगा तो जनता और प्रशासन ने मिलकर क़ानून की जगह न्याय और सुरक्षा को अधिक महत्व दिया। मैंने तो यहाँ तक सुना है कि एक मानवाधिकार नेता, जो नहीं माना और नक्सलवादियों के पक्ष में मानवाधिकार का नाटक करने लगा, उसे भी सबक सिखाने की योजना पर विचार चल रहा था, किन्तु वह नेता दब गया।

विचारणीय प्रश्न यह है कि यदि क़ानून सुरक्षा देने में विफल हो जाए, विधायिका ऐसे बाधक क़ानूनों में फेर-बदल को तैयार न हो और न्यायपालिका भी क़ानूनों से पूरी तरह चिपक जाए तो समाज क्या करे? साफ़-साफ़ दिख रहा है कि अपराधी अपराध करके न्यायालय से निर्दोष छूट रहे हैं। न्यायालय उन्हें बार-बार अपराध करने से रोकने में विफल हैं। इसके विपरीत हमारी क़ानून-व्यवस्था तो ऐसे अपराधी को बार-बार अपराध करने का प्रमाण-पत्र दे रही है। ऐसा प्रमाण-पत्र देने वालों का प्रयास पूरी तरह अपराध है, भले ही वह क़ानून-सम्मत क्यों न हो। न्यायपालिका न्याय और सुरक्षा के लिए है। उसे तब तक क़ानून की सुरक्षा करनी चाहिए जब तक वह क़ानून न्याय और सुरक्षा के लिए बाधक नहीं है। यदि कोई क़ानून बाधक है तो न्यायपालिका का कर्तव्य है कि वह विधायिका से ऐसे क़ानूनों में संशोधन का निवेदन करे। क्योंकि न्यायपालिका क़ानून की सुरक्षा के लिए बाध्य तो है, किन्तु न्याय और सुरक्षा की कीमत पर नहीं। यदि न्यायपालिका भी क़ानून की सुरक्षा करते हुए अपराधी को निर्दोष घोषित करती है तो उसका यह कार्य समाज के लिए अपराध माना जाना चाहिए, भले ही वह कितना ही क़ानून-सम्मत क्यों न हो। दूसरी ओर यदि किसी कार्यपालिका/पुलिस अधिकारी ने ऐसे अपराधी को फ़र्ज़ी मुठभेड़ में मार गिराया तो उस अधिकारी का कार्य ग़ैर-क़ानूनी तो है, किन्तु अपराध नहीं। यह बात स्पष्ट रूप से समझ लेनी आवश्यक है कि न तो हर अपराध ग़ैर-क़ानूनी होता है और न ही हर ग़ैर-क़ानूनी कार्य अपराध होता है। किसी का मकान किराये पर लेकर उसे कभी खाली न करने के दाँव-पेंच ग़ैर-क़ानूनी कार्य नहीं हैं, किन्तु अपराध तो हैं। यदि कोई व्यक्ति अपना मकान खाली कराने के उद्देश्य से झूठ बोले तो उसका झूठ बोलना ग़ैर-क़ानूनी कार्य तो है, किन्तु अपराध नहीं।

सोहराबुद्दीन प्रकरण में मेरी दृष्टि में फ़र्ज़ी मुठभेड़ के प्रकरण ग़ैर-क़ानूनी कार्य माने जाने चाहिए, अपराध नहीं। किन्तु इस बीच एक नया तथ्य यह प्रकाश में आया कि गृह-राज्य मंत्री ने राजस्थान के कुछ व्यापारियों से धन लेकर यह मुठभेड़ कराई। यदि यह बात सच है तो सोहराबुद्दीन की हत्या भले ही अपराध न हो, किन्तु इस प्रकार की सौदेबाज़ी समाज को धोखा देने का प्रयास तो है और ऐसा धोखा भी तो अपराध ही है। यदि सोहराबुद्दीन, कौसर बी और तुलसी सहानुभूति के पात्र नहीं थे तो बंजारा, अमित शाह और जब भेद खुले तो मोदी भी सहानुभूति के पात्र नहीं, क्योंकि उन्होंने जनहित के लिए हत्या न करके स्वहित के लिए की है।

स्पष्ट है कि वर्तमान समय में न्याय और सुरक्षा से क़ानून लगातार दूर से अधिक दूर होता जा रहा है। विधायिका क़ानूनों को न्याय और सुरक्षा की दिशा में संशोधित न करके, न्याय और सुरक्षा को ही कमज़ोर करती जा रही है। न्यायपालिका भी क़ानून की रक्षा में इतना अधिक बढ़-चढ़कर कार्य कर रही है कि उसे न्याय और सुरक्षा की परवाह ही नहीं।ग़ैर-क़ानूनी और अपराध का भेद मिटा दिया गया है। आम लोगों का क़ानून पर से विश्वास उठता जा रहा है और हिंसा पर विश्वास बढ़ रहा है। यह एक ख़तरनाक स्थिति है।

इसका एक ही समाधान है कि न्याय, सुरक्षा और क़ानून के बीच की दूरी न्यूनतम कर दी जाए। यदि अपराधियों को दंड मिलने लगे तो फ़र्ज़ी मुठभेड़ अनावश्यक हो जाएँगी। इतनी साधारण-सी बात को भी हमारी विधायिका और न्यायपालिका नहीं समझना चाहती, तो समाज क्या करे?

ज्ञान यज्ञ परिवार ने पिछले पंद्रह वर्षों से लगातार शोध करके इस संबंध में कुछ प्रस्ताव तैयार किए हैं।

1.अपराध, ग़ैर-क़ानूनी और अनैतिक को अलग-अलग स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाए। इस संबंध में और विवेचना ज्ञान तत्व अंक 135, जून 2007 में भी पढ़ सकते हैं।

2.सरकार न्याय और सुरक्षा को अपना दायित्व घोषित करके शेष सभी जनहितकारी कार्यों को दायित्व से अलग कर दे।

3.यदि किसी ज़िले के ज़िला जज, कलेक्टर तथा पुलिस अधीक्षक संयुक्त रूप से महसूस करें कि अपराधियों के भय से आम नागरिक गवाही देने से डर रहा है, तो उस ज़िले में सीमित समय के लिए आपातकाल घोषित करके गुप्तचर न्याय व्यवस्था को लागू कर दें।

मुझे पूरा विश्वास है कि ये तीन प्रयत्न सारी फ़र्ज़ी मुठभेड़ों सहित ग़ैर-क़ानूनी कार्यों पर विराम लगाने में समर्थ होंगे। इस संबंध में समाज में व्यापक विचार-मंथन होना चाहिए।

3- उत्तराधिकार का औचित्य और कानून

किसी व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात उसकी व्यक्तिगत संपत्ति के स्वामित्व का अधिकार उत्तराधिकार माना जाता है। इस संबंध में कुछ सिद्धांतों पर विचार करना आवश्यक है–

1.जो कुछ परंपरागत है, वह पूरी तरह गलत है अथवा जो कुछ परंपरागत है, वह पूरी तरह सही है – ऐसी अतिवादी धारणाओं से बचना चाहिए। देश, काल और परिस्थिति अनुसार सिद्धांतों में संशोधन करना चाहिए।

2.समाज में प्रचलित मान्यताओं को सामाजिक और वैचारिक धरातल पर चुनौती देकर सुधारना चाहिए। प्रारंभ में कानून का उपयोग नहीं करना चाहिए। सामाजिक स्वीकृति मिलने के बाद, यदि एक-दो प्रतिशत लोग न माने, तब कानून का उपयोग किया जा सकता है।

3.प्राचीन समय में "जर, जोरू और जमीन" को सबसे अधिक विवादपूर्ण माना गया है। यह आज भी उतनी ही सच्चाई है।

4.समाज में मान्य परंपराओं को एकाएक बदलने के प्रयास की अपेक्षा, धीरे-धीरे सुधारने का प्रयास करना चाहिए।

5.परिवार के आंतरिक मामलों में कानून का न्यूनतम हस्तक्षेप होना चाहिए। अधिक हस्तक्षेप नुकसान करता है।

6.किसी भी परिस्थिति में ऐसा कानून नहीं बनना चाहिए जो परिवार की आंतरिक एकता को कमजोर करे।

ज़र, ज़ोरू और जमीन के महत्व को स्वीकार करते हुए भी, हम यहाँ महिलाओं के संबंध में अलग से कोई चर्चा नहीं कर रहे हैं। हमारी चर्चा केवल ज़र, अर्थात संपत्ति और जमीन तक सीमित है। वर्तमान समय में जमीन भी संपत्ति का ही एक भाग बन गई है। प्राचीन व्यवस्था समय-समय पर बदलती रही है। उस समय उत्तराधिकार के विवाद समाज में ही निपट जाते थे और यह कानून के दायरे में नहीं था। जब कोई लड़का पिता से अलग होता था, तो उसका कोई अधिकार नहीं माना जाता था; पिता स्वेच्छा से जो दे देते, वही पर्याप्त था। पिता की मृत्यु के बाद भी यदि भाइयों में कोई बंटवारा होता था तो बड़ा भाई स्वेच्छा से जो देता, वही

"...इसलिए अलग-अलग क्षेत्रों में यह दाय-भाग या मिताक्षरा के रूप में प्रचलित थी। मुसलमानों में कुछ अलग तरीके की व्यवस्था थी। बाद में इन मान्यताओं को कानूनी रूप देकर और अधिक जटिल बना दिया गया। ..."

वही ठीक था। वैसे भी, जब परिवार के किसी सदस्य का विवाह होता था, तो वर पक्ष का परिवार बहू के स्वामित्व में इतनी संपत्ति देता था जो सामाजिक दृष्टि से पर्याप्त मानी जाती थी। इसी तरह, लड़की का पिता भी वर को संपत्ति देता था। इन दोनों प्रकार की संपत्ति परिवार की नहीं, वर-वधु की व्यक्तिगत मानी जाती थी, जिसे वे परिवार से अलग होते समय ले जा सकते थे। अंग्रेजों के शासनकाल में इस सामाजिक प्रक्रिया में कानून का दखल हुआ और पैतृक संपत्ति में भाईयों का कानूनी हक बना दिया गया। प्राचीन व्यवस्था कानूनी नहीं थी, इसलिए अलग-अलग क्षेत्रों में यह दाय-भाग या मिताक्षरा के रूप में प्रचलित थी। मुसलमानों में कुछ अलग तरीके की व्यवस्था थी। बाद में इन मान्यताओं को कानूनी रूप देकर और अधिक जटिल बना दिया गया। महिलाओं को संपत्ति में अधिकार देकर और अधिक अव्यवस्था पैदा कर दी गई। प्रचलित मान्यताओं को सामाजिक जागृति के बाद संशोधित करना चाहिए था, लेकिन उन्हें जनजागरण की अपेक्षा कानून के द्वारा बदलने का प्रयास किया गया। सत्तर वर्ष बीत गए, फिर भी भारत की 90 प्रतिशत महिलाओं को यह नहीं पता कि संपत्ति में उनके कहां और कितने अधिकार हैं। यदि यह पता चल जाए, तो पूरे देश में अराजकता फैल सकती है। अधिकांश परिवार टूटकर कुरुक्षेत्र का मैदान बन जाते। मैं स्वयं अब तक नहीं जान पाया कि किसी महिला को पिता की संपत्ति में कब और कितना अधिकार है, और पिता और पुत्र के

मामलों में कितना। मैंने बहुत प्रयास किया, लेकिन नहीं समझ सका, जबकि ऐसे अनेक मामलों में मुझे पंचायत भी करनी पड़ती है। स्पष्ट दिखता है कि कानून का उद्देश्य उत्तराधिकार के विवाद को कम करना नहीं था, बल्कि महिला और पुरुष को दो वर्गों में बांटकर उनके बीच ऐसा झगड़ा उत्पन्न करना था, जिससे वकीलों का व्यवसाय चलता रहे, न्यायालय सक्रिय रहे और संसद भी व्यस्त रहे। यहाँ तक कि यह भी स्पष्ट नहीं है कि पुत्र को पिता के जीवित रहते क्या-क्या उत्तराधिकार हैं।

कुछ लोग उत्तराधिकार के नियमों को ही समाप्त करने के पक्ष में हैं, लेकिन उनके पास यह उत्तर कभी नहीं होता कि किसी व्यक्ति की मृत्यु के बाद उसकी संपत्ति का क्या होगा। कौन सी संपत्ति उसकी व्यक्तिगत मानी जाएगी और कौन सी परिवार की–इस पर उनका कोई स्पष्ट दृष्टिकोण नहीं होता। ऐसे लोग अधिकांशतः किसी न किसी रूप में सत्ता के साथ अपने संबंध बनाए रखते हैं, इसलिए उन्हें सत्ता का एजेंट मान लेना चाहिए। फिर भी, संपत्ति के उत्तराधिकार की प्रचलित विधियाँ अत्यंत अस्पष्ट हैं। इनसे हटकर एक बिल्कुल सहज और सरल विधि का विकास आवश्यक है।

अब तक भारत ने पश्चिमी जगत की व्यक्तिगत संपत्ति के अधिकार की अंध नकल की है। संपत्ति के अधिकांश विवाद इसी अधिकार के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं। इसके कारण लोभ-लालच बढ़ता है, छल-कपट बढ़ता है और पारदर्शिता कम हो जाती है। यदि संपत्ति का व्यक्तिगत स्वामित्व समाप्त कर दिया जाए और पारिवारिक स्वामित्व स्थापित कर दिया जाए, तो संपत्ति के उत्तराधिकार का औचित्य अपने आप समाप्त हो जाएगा। किसी व्यक्ति की मृत्यु के बाद कोई संपत्ति परिवार से अलग नहीं मानी जाएगी। अपवाद स्वरूप, यदि कोई व्यक्ति बिल्कुल अकेला रहना चाहता है, तो उसके लिए कुछ अलग तरीका अपनाया जा सकता है, जैसे कि उसकी संपत्ति ग्राम सभा में विलीन हो जाए या कुछ अन्य नियम बनाए जाएँ।इस प्रकार की सरल विधि से महिला-पुरुष, भाई-बहन और पिता-पुत्र के संपत्ति संबंधी विवाद अपने आप समाप्त हो जाएंगे। न्यायालयों में संपत्ति संबंधी मुकदमे बहुत कम होंगे और वकीलों की बड़ी संख्या न्यायालयों से मुक्त होकर या तो खेती की ओर जायेगी या किसी अन्य उद्योग-धंधे में लगेगी।

मेरा स्पष्ट मानना है कि परिवार व्यवस्था को मजबूत और व्यवस्थित किए बिना समस्याओं का समाधान संभव नहीं है। इस परिवार सशक्तिकरण की सबसे बड़ी बाधा संपत्ति अधिकार संबंधी विवाद हैं। यदि इन विवादों को सहज और सरल विधि से दूर कर दिया जाए, तो यह समाज के लिए बहुत बड़ा हित होगा।

1- हरिजन आदिवासी कानून

समाज में धूर्त और शरीफ रूप में टकराव हमेशा बना रहता है। यदि हम समाज का आकलन बुद्धिजीवी और श्रमजीवी के रूप में करें, तो यह पाया जाता है कि धूर्तता का अधिकाँश प्रतिशत बुद्धिजीवियों के बीच ही मिलता है। श्रमजीवियों में यह प्रतिशत नगण्य ही रहता है, क्योंकि सफल धूर्तता के लिए जितनी कला, कौशल, साधन और संगठन की आवश्यकता होती है, वह श्रमजीवियों के पास होता ही नहीं। बुद्धिजीवियों की धूर्तता से ही श्रमजीवियों की सुरक्षा संभव है, क्योंकि श्रमजीवियों में न तो धूर्तता करने की क्षमता होती है और न ही उससे बचने की। वे लगातार बुद्धिजीवियों के मार्गदर्शन में चलते रहते हैं, क्योंकि उन्हें स्वयं नहीं पता होता कि जो उन्हें मार्ग दिखा रहे हैं, उनका उद्देश्य शोषण है या सुरक्षा।

वर्ण व्यवस्था और जाति व्यवस्था ऐसी अच्छी समाज व्यवस्था में शामिल थी, जो श्रम की उचित सुरक्षा का आश्वासन देती थी। धीरे-धीरे धूर्त बुद्धिजीवियों ने इस वर्ण–जाति व्यवस्था को कर्म से हटाकर जन्म पर आधारित कर दिया और आरक्षण की ऐसी कुटिल व्यवस्था बनाई कि उनके आगे आने वाली पीढ़ियों तक श्रम का शोषण सुनिश्चित हो गया।

धीरे-धीरे कुछ शरीफ बुद्धिजीवियों की आत्मा जगी और उन्होंने इस बुराई को ठीक करने का प्रयास किया। दूसरी ओर, कुछ धूर्त बुद्धिजीवियों का स्वार्थ जागा और उन्होंने इस बुराई से लाभ उठाने का प्रयास किया। इन धूर्तों ने शरीफ बुद्धिजीवियों के योग्यतानुसार वर्ण और जाति के सार्थक प्रयत्न को पीछे ढकेल कर, वर्ण और जाति के अनुसार योग्यता का ऐसा नया खाका तैयार किया कि इस आरक्षण के जाल से उनकी और उनके आगे आने वाली कई पीढ़ियों की सुरक्षा सुनिश्चित हो गई। जातीय आरक्षण का उस समय तक लाभ उठा रहे सवर्ण धूर्तों ने इन अवर्ण धूर्त बुद्धिजीवियों से पहले संघर्ष किया और बाद में समझौता कर लिया। धूर्त सवर्णों की स्वतंत्रता के बाद तक की पीढ़ियाँ आज भी समाज में वैसा ही सामाजिक सम्मान प्राप्त कर रही हैं। दूसरी ओर, धूर्त अवर्णों की स्वतंत्रता के बाद बनी नई पीढ़ियाँ अपनी आने वाली कई पीढ़ियों के लिए लाभ सुनिश्चित कर चुकी हैं, क्योंकि धूर्त सवर्ण बुद्धिजीवियों को परंपरागत सामाजिक आरक्षण का लाभ मिल रहा है और धूर्त अवर्ण बुद्धिजीवियों को सुधारात्मक संवैधानिक आरक्षण का। शरीफ बुद्धिजीवियों की कर्मणा आधारित जाति–वर्ण व्यवस्था पूरी तरह असफल हो चुकी है। श्रमजीवियों को स्वतंत्रता से पूर्व धूर्त सवर्णों और स्वतंत्रता के बाद धूर्त अवर्णों द्वारा ठगा गया। शरीफ बुद्धिजीवियों के प्रयास विफल हो गए।

इन धूर्त बुद्धिजीवियों ने सवर्ण और अवर्ण के रूप में दो गुट बना कर ऐसा नाटक रचा कि पूरा मंच इनके अधिकार में आ गया, और श्रमजीवी जमीन पर बैठकर केवल उनके इस नाटक का रस प्राप्त करता रहा। उस बेचारे को पता ही नहीं चला कि आरक्षण रूपी सूखी हड्डी चबाने से निकलने वाला खून वास्तव में श्रमजीवियों के अपने ही शरीर का खून है। इन धूर्तों ने शिक्षा को राष्ट्रीय विकास का आधार बना दिया। इनके चक्रव्यूह में फंसकर श्रमजीवी पचहत्तर रुपये तक के लिए हाथ-पांव पटक रहा है, जबकि बुद्धि का मूल्य सैकड़ों से हजारों रुपये प्रतिदिन की ओर बढ़ रहा है। शिक्षा का बजट तेज गति से बढ़ाया जा रहा है, लेकिन श्रमिकों का बजट बढ़ाने के लिए इनके पास पैसे का अभाव ही बना रहता है। सोनिया जी ने यदि ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना नहीं चलाई होती, तो श्रमजीवी तो इस नाटक को देखने लायक भी नहीं रह जाता। गरीब का हाल और भी खराब है। भूख का विश्व का न्यूनतम मापदंड प्रतिव्यक्ति 2,400 कैलोरी प्रतिदिन है, जिसका भारतीय मूल्य 13 रुपये प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति है। यह 2,400 कैलोरी का लक्ष्य तो 15 अगस्त 1947 को पार कर भूख के कलंक से मुक्त हो जाना चाहिए था, किन्तु साठ वर्ष बाद भी वह लक्ष्य अधूरा है। आज भी 21 करोड़ लोग इस लक्ष्य के नीचे जीवन यापन कर रहे हैं। दूसरी ओर, शिक्षा को मूल अधिकार में शामिल करके उसके नए-नए लक्ष्य निर्धारित करने के प्रयास जोर-शोर से किए जा रहे हैं। इन शोषक बुद्धिजीवियों के एक गुट ने लक्ष्य वृद्धि की मांग की और दूसरा गुट उसे पूरा करने का आश्वासन देकर इसे लागू करने का प्रयास करता है। छत्तीसगढ़ के मुख्यमंत्री ने भूख मिटाने की दिशा में सस्ते अनाज का एक सार्थक प्रयास अवश्य किया है, किन्तु यह प्रयास केवल एक छोटा सा प्रयास है। वास्तविकता यह है कि भूख, गरीबी और श्रम के लिए अभी लंबा संघर्ष करना बाकी है।

धूर्त लोगों ने शराफत को कमजोर करने के लिए कई प्रकार की तिकड़म की हैं। इसी उद्देश्य से वे नए-नए कानून भी बनाते रहते हैं। स्वतंत्रता के बाद हरिजन–आदिवासी आरक्षण एक ऐसा ही कानून था, जिससे धूर्त बुद्धिजीवी मजबूत और शरीफ बुद्धिजीवी, श्रमजीवी, गरीब, ग्रामीण कमजोर हुए। इन धूर्तों ने हरिजन–आदिवासियों की सुरक्षा के नाम पर सवर्णों के विरुद्ध बहुत कठोर कानून भी बनवा दिए। प्रचारित किया गया कि इस कानून से शरीफ सशक्त होंगे, क्योंकि हरिजन–आदिवासी सामान्यतः धूर्त सवर्णों से अपनी सुरक्षा नहीं कर पाते। लंबे समय बाद इन कानूनों से होने वाले लाभ और हानि का आकलन किया गया तो पाया गया कि इन कानूनों ने लगातार धूर्तता को मजबूत किया और शरीफता को कमजोर किया। छत्तीसगढ़ के कई जिलों में इसका आकलन हुआ। बिलासपुर जिले की सरकारी तस्वीर यह है कि वर्ष 1950 से 2005 तक के ग्यारह वर्षों में विभिन्न थानों में कुल 5,056 मामले हरिजन–आदिवासी कानूनों के अंतर्गत दर्ज किए गए। इन 5,056 रजिस्टर्ड अपराधों में से पुलिस ने केवल 196 मामले सही पाए, जबकि लगभग 4,800 मामले असत्य घोषित करके निरस्त कर दिए। इन 196 मामलों में भी ग्यारह वर्षों के कार्यकाल में सिर्फ दस अपराधियों को ही सजा हुई; शेष सभी न्यायालय द्वारा निर्दोष सिद्ध हो गए। त्वरित न्याय प्रयास के कारण कोई मुकदमा लंबित नहीं है। ये आंकड़े जांचने योग्य हैं और पूरी तरह प्रमाणित सच हैं। पांच हज़ार छप्पन रजिस्टर्ड अपराधों में से केवल दस ही सच सिद्ध हुए। स्पष्ट है कि या तो ये मुकदमे धूर्त अवर्णों ने शरीफ सवर्णों को परेशान करने के उद्देश्य से खड़े किए थे, या धूर्त सवर्णों ने शरीफ अवर्णों के विरुद्ध अपराध करके प्रशासनिक मिलीभगत से स्वयं को निर्दोष सिद्ध कर लिया। इस आकलन के आधार पर यह स्पष्ट है कि धूर्तता अधिक मजबूत हुई है और शरीफता कमजोर हुई है। चाहे यह धूर्तता अवर्णों की हो या सवर्णों की, मजबूत तो हुई ही है और हरिजन कानूनों ने इस धूर्तता को मजबूत करने में सहायता की है।

कुछ अवर्णों के इस तर्क में भी सच्चाई है कि इन कानूनों ने संपूर्ण रूप से हरिजन–आदिवासियों का मनोबल ऊँचा किया है। किन्तु यह बात और अधिक सच है कि इन कानूनों ने जिस मात्रा में शरीफ अवर्णों को मजबूत किया, उससे कई गुना अधिक इन कानूनों ने शरीफ को कमजोर किया है। यदि कुल मिलाकर शराफत कमजोर होकर धूर्तता मजबूत होती है, तो चाहे वह धूर्तता सवर्णों की हो या अवर्णों की, यह नुकसानदेह ही है। और धूर्त लोग दो गुटों में बंटकर लगातार ऐसे कानूनों को और अधिक मजबूत बनाने के प्रयत्नों में सक्रिय रहते हैं। क्योंकि शरीफ बिल्लियों की रोटी लोकतांत्रिक तरीके से बंदर द्वारा खा जाने में, ये कानून ही तो सहायक बने रहते हैं।

साठ वर्षों से जारी ऐसे जातीय आरक्षण और हरिजन–आदिवासी कानूनों से न गरीबों को लाभ हुआ, न ग्रामीणों को और न ही श्रमजीवियों को। इसके विपरीत, इन कानूनों ने धूर्त बुद्धिजीवियों को मजबूत किया और शरीफ बुद्धिजीवियों को कमजोर किया। खर्च के लिए करोड़ों रुपये जनता से टैक्स के रूप में वसूल करना, जाति व्यवस्था को जीवित रखना, श्रम के साथ विश्वासघात करना–इन सब नुकसान के बावजूद ग्यारह वर्षों में केवल दस अपराधियों को सजा दिलाने का परिणाम यदि धूर्तों का षड़यंत्र न माना जाए तो और क्या माना जाएगा। श्रमजीवी तो बेचारे, नून, तेल, लकड़ी के चक्कर में ऊपर उठने की स्थिति में नहीं हैं। धूर्त अवर्णों और धूर्त सवर्णों के बीच नापाक गठबंधन हो चुका है। परिणामस्वरूप संपूर्ण शराफत को भुगतना पड़ेगा। इसलिए सभी शरीफों को धर्म, जाति, सवर्ण–अवर्ण के भेद भुलाकर इस धूर्त षड़यंत्र के विरुद्ध एक जुट आवाज उठानी चाहिए। अन्यथा धर्म और जातियां तो रह जाएँगी, राज्य भी बचे रहेंगे, किन्तु शराफत अपराधियों और धूर्तों की गुलाम हो जाएगी।

5- न्याय बनाम कानून: चुनाव आयोग की सच्चाई

जिस तरह किसी कमजोर और भले व्यक्ति को बिना गलती के चालाक लोग डांट देते हैं, वही हाल आज भारत में चुनाव आयोग का भी हो रहा है। हाल ही में हरियाणा के एक गांव में सरपंच का चुनाव हुआ। इस चुनाव में चुनाव आयोग कहीं गलत नहीं था। फिर भी, चुनाव आयोग की सुरक्षा के लिए न सरकार ने कोई सफाई दी, न न्यायपालिका ने, और खुलेआम बेचारे चुनाव आयोग को बदनाम किया जा रहा है। जबकि इस पूरे मामले में गलती न्यायपालिका की थी, चुनाव आयोग ने न्याय किया।

घटना इस प्रकार थी: चुनाव अधिकारी ने भूलवश एक केंद्र के वोट विपक्षी नेता के खाते में डाल दिए, जिससे हारे हुए उम्मीदवार के वोट बढ़ गए और उसे जीत घोषित कर दिया गया। आधे घंटे बाद जब चुनाव अधिकारी को अपनी गलती का पता चला, तो उसने तुरंत पुनर्गणना कर दी और जिसे पहले हारा हुआ घोषित किया गया था, उसे जीत का प्रमाण पत्र भी दे दिया। इस स्थिति में बताइए, चुनाव आयोग और चुनाव अधिकारी कहां गलत थे? उन्होंने न्याय किया। हारा हुआ उम्मीदवार उच्च न्यायालय गया, और उच्च न्यायालय ने उस निर्णय को पलट दिया क्योंकि उसने कानून का पक्ष लिया। परिणामस्वरूप हारा हुआ उम्मीदवार वर्षों तक वहां का सरपंच बना रहा।

जब न्याय के लिए सुप्रीम कोर्ट में मामला गया, सुप्रीम कोर्ट ने बक्से खोलकर चुनाव अधिकारी के निर्णय को स्वीकार किया। अब बताइए, इसमें कौन गलत था? दुर्भाग्य है कि कोई यह कहने के लिए तैयार नहीं कि चुनाव आयोग ने न्याय का साथ दिया। सुप्रीम कोर्ट ने न्याय का साथ दिया, हाई कोर्ट ने कानून का पालन करके गलती की। फिर भी सारे लोग बेचारे चुनाव आयोग को गलत बता रहे हैं। मेरे विचार से चुनाव आयोग कहीं गलत नहीं है। कल चुनाव आयोग ने प्रेस कॉन्फ्रेंस करके राहुल गांधी के हर आरोप का विस्तार से जवाब दिया, लेकिन दुर्भाग्य यह है कि मीडिया चुनाव आयोग को गलत बता रहा है, राहुल गांधी को नहीं। क्योंकि कमजोर की गलती बताने में सबको मज़ा आता है, चाहे वह नेता हो, मीडिया हो या न्यायपालिका।

6- भारतीय राजनीति और जनसंख्या संतुलन का प्रश्न

भारतीय राजनीति में पंडित नेहरू और अंबेडकर दोनों को सबसे अधिक चालाक नेता माना जाता है। नेहरू के मन में हिंदुत्व के प्रति बहुत घृणा थी और अंबेडकर के मन में हिंदुत्व के प्रति बहुत प्रतिशोध की भावना थी। इसलिए दोनों भारत से हिंदुत्व की बिल्कुल सफाई चाहते थे। इस मामले में दोनों एक साथ हो गए थे। नेहरू ने इस्लाम और साम्यवाद को एक साथ जोड़कर अपना मार्ग प्रशस्त किया। नेहरू चाहते थे कि उनके जीवनकाल में ही भारत साम्यवादी बन जाए और भारत की आबादी में मुसलमान 25-30% हो जाए, जिससे जल्दी ही भारत को कम्युनिस्ट राष्ट्र घोषित कर दिया जाए। नेहरू यह भी चाहते थे कि अधिक से अधिक पाकिस्तान और बांग्लादेशी मुसलमान भारत में प्रवेश कर लें, जिससे आबादी का अनुपात बहुत आसानी से प्राप्त हो जाए। दूसरी ओर, अंबेडकर भी यह चाहते थे कि किसी तरह हिंदुओं की आबादी घटे और पूरे देश का हिंदू-मुस्लिम समीकरण बदल जाए। गांधी बाधक थे, लेकिन जा चुके थे, और पटेल भी बहुत कमजोर होते जा रहे थे, इसलिए कोई बाधा नहीं थी। लेकिन नेहरू के जीवनकाल में यह नहीं हो सका।बाद में इंदिरा गांधी ने आकर कुछ मार्ग बदला और उसने तानाशाही के लिए कुछ अलग रास्ता चुना, लेकिन इंदिरा की हत्या हो गई। जब राजीव गांधी प्रधानमंत्री बने, तो उन्हें भले आदमी माने जाते थे। राजीव की ऐसी कोई योजना नहीं थी, लेकिन सोनिया बहुत चालाक थीं और उन्होंने मनमोहन सिंह के माध्यम से अपनी इस्लाम-साम्यवाद नीति को आगे बढ़ाया और योजना बनाई कि हिंदुओं को समाप्त कर दिया जाए। दुर्भाग्यवश इसी बीच में सत्ता बदल गई और सोनिया गांधी की योजना सफल नहीं हो सकी।

अब राहुल गांधी दिन-रात इस बात से चिंतित हैं कि पाकिस्तान और बांग्लादेशी रोहिंग्या मुसलमानों को भारत में अधिक से अधिक प्रवेश दिया जाए और भारत में मुसलमान की आबादी 30% हो जाए, जिससे साम्यवाद और इस्लाम को मिलाकर हिंदुओं को समाप्त किया जा सके। लेकिन अब उनकी योजना सफल नहीं हो पा रही है। धीरे-धीरे विदेशी मुसलमानों को भारत से निकाला भी जा रहा है और राहुल के सपने उनके देखते-देखते चकनाचूर होते जा रहे हैं। राहुल का भविष्य क्या होगा, इस बात को लेकर वह बहुत चिंतित हैं, और अब ऐसा लगता है कि धीरे-धीरे मुसलमानों की आबादी भारत में कम हो जाएगी।

7- सुप्रीम कोर्ट, पशु अधिकार और समाज की वास्तविकता

भारत का सुप्रीम कोर्ट भी कई मामलों में लाचार हो जाता है और कई बार उसे अपनी इच्छा के विपरीत कुछ लोगों के सामने झुकना पड़ता है। अभी आपने देखा होगा कि सुप्रीम कोर्ट ने कुत्तों के संबंध में एक निर्णय दिया था। वह निर्णय यद्यपि कम कठोर था, लेकिन फिर भी अच्छी दिशा में था। मैं तो पिछले 50 वर्षों से लगातार कहता रहा हूँ कि पशुओं को कोई मौलिक अधिकार नहीं होता। यदि पशुओं की संख्या अधिक बढ़ जाए तो उन्हें नियंत्रित करने की व्यवस्था होनी चाहिए। मांसाहार अच्छी बात नहीं है, लेकिन इसे पूरी तरह से रोकना संभव नहीं है क्योंकि यह व्यक्ति की स्वतंत्रता का मामला है। इसी प्रकार, यदि कोई अपने मंदिरों में बलि चढ़ाता है तो उसकी स्वतंत्रता होनी चाहिए। मंदिर प्रशासन का काम है कि वह अनुमति दे या न दे। इसी तरह, कुत्तों की संख्या अधिक हो जाए तो उन्हें नियंत्रित करना चाहिए। इसके लिए किसी नाटक या प्रदर्शन की आवश्यकता नहीं है। जो लोग दया सिद्धांत का नाटक करते हैं, वे पूरी तरह गलत हैं। सोचिए, हम विदेशों से अनेक वस्तुओं का आयात कर रहे हैं और अपने संसाधनों को ऐसे आवारा कुत्तों को खिलाने में खर्च कर रहे हैं, यह कहां तक उचित है।

मैं यह बात भी स्पष्ट कर दूँ कि मैं कुत्तों को गोली मारने के पक्ष में नहीं था। मेरी राय यह थी कि यदि इनकी संख्या अधिक बढ़ जाए, तो उन्हें इकट्ठा करके करंट आदि के माध्यम से नियंत्रित किया जा सकता है। सरकार को इस मामले में किसी प्रकार की मानवता का दिखावा करने की जरूरत नहीं है। फिर भी, जब मेनका गांधी, राहुल गांधी, प्रियंका गांधी और कई पशु प्रेमी इस मामले में सामने आए, तो सुप्रीम कोर्ट को अपने आदेश में थोड़ा सुधार करना पड़ा। इसके बाद भी सुप्रीम कोर्ट ने एक सकारात्मक कदम उठाया कि जो भी पशु प्रेमी या संस्थाएं न्यायालय में आईं, उन्हें एक सप्ताह के भीतर ₹25,000 से ₹2,00,000 तक जमा करना होगा, ताकि पशुओं पर होने वाले खर्च की आंशिक भरपाई हो सके। मेरा यह मानना है कि सुप्रीम कोर्ट इस तरह के मामलों में बदनामी से डरता है, लेकिन निर्णय लेने में विवेक भी रखता है।

8- वैश्विक राजनीति

दुनिया की राजनीति में धीरे-धीरे दो बातें साफ होती जा रही हैं: ट्रंप और रूस के राष्ट्रपति पुतिन। यदि इन दोनों की तुलना करें, तो ट्रंप पूरी तरह अनाड़ी नेता लगते हैं, जबकि पुतिन एक खिलाड़ी की तरह। मुझे पहले भी लगता था कि पुतिन ट्रंप को बहकाने में सफल हो जाएंगे। इसी तरह, भारत की राजनीति में भी एक तरफ विपक्ष के नेता राहुल गांधी अनाड़ी शख्सियत दिखते हैं, और दूसरी ओर नरेंद्र मोदी एक अनुभवी खिलाड़ी की तरह। जिस तरह ट्रंप में बहुत ज्यादा घमंड है और बिना सोचे कुछ भी बोल देते हैं, उसी तरह राहुल गांधी के बारे में भी कहा जा सकता है कि वे बिना सोचे कुछ भी बोल देते हैं और अहंकार उनके व्यक्तित्व में अधिक है। दूसरी ओर, राष्ट्रपति पुतिन जो कुछ भी बोलते हैं, वह योजना पूर्वक और सोच-समझकर बोलते हैं। नरेंद्र मोदी भी जो कुछ बोलते हैं, वह बहुत सोच-समझकर और योजना अनुसार होता है।

जहां तक अमेरिका के हितों की बात है, अभी तक ट्रंप ने जो कुछ भी किया है, वह अमेरिका के हित में किया है। ट्रंप द्वारा भारत पर लगाए गए टैरिफ को भी अमेरिका के हित में उठाया गया कदम कहा जा सकता है। ट्रंप का कोई भी कदम किसी भी दृष्टि से अनुचित नहीं कहा जा सकता, भले ही इससे दुनिया के अन्य देशों को कुछ कष्ट होता हो। लेकिन ट्रंप का व्यक्तिगत व्यवहार और विश्वसनीयता इस तरह शून्य होती जा रही है, जैसी राहुल गांधी की हो चुकी है। ट्रंप के कार्यों का भविष्य में क्या परिणाम आएंगे, यह आगे पता चलेगा। वहीं, राहुल गांधी के सारे परिणाम पहले ही स्पष्ट हो चुके हैं और उनमें अब कोई बदलाव की संभावना नहीं दिखती। राजनीति में अनाड़ीपन का कोई उपयोग नहीं होता; अनाड़ी हमेशा लड़ाई हार ही जाता है। राहुल गांधी का परिणाम आ चुका है, जबकि ट्रंप का भविष्य अभी देखा जाना बाकी है।

9- नई राजनीतिक व्यवस्था

हम जानते हैं कि वर्तमान समय में हमारी पूरी समाज व्यवस्था एक जेल में बंद है। हमारी राज्य व्यवस्था ने पूरी समाज व्यवस्था को गुलाम बना लिया है। इसलिए हमें इस गुलामी से मुक्ति चाहिए। यह हमारी पहली आवश्यकता है। लेकिन यदि हम गुलामी से मुक्ति के बाद की योजना नहीं बनाएंगे, तो भारत का वही हाल होगा जैसा स्वतंत्रता के बाद नई राजनीतिक गुलामी के रूप में आया।

स्पष्ट है कि स्वतंत्रता हमारी पहली प्राथमिकता है, लेकिन नई समाज व्यवस्था पर चर्चा भी उसके साथ चलती रहनी चाहिए। हमें स्वतंत्रता संघर्ष के लिए अधिक शक्ति लगानी होगी और नई व्यवस्था के एक प्रारूप पर विचार-मंथन भी करते रहना होगा। इसीलिए हमने दो अलग - अलग ग्रुप बनाए हैं। एक ग्रुप स्वतंत्रता संघर्ष में लगा हुआ है, जिसे हम ज्ञान केंद्र के रूप में विकसित कर रहे हैं। यह ग्रुप तंत्र-मुक्त संविधान के लिए समाज में जन-जागरण कर रहा है। दूसरा ग्रुप संविधान सभा के रूप में नई समाज व्यवस्था पर दिन-रात सोच रहा है। हम ऐसा कोई खतरा नहीं उठा सकते कि स्वतंत्रता के बाद समाज में शून्य बन जाए और उस शून्य को भरने के लिए कोई भी आलतू-फालतू इकाई आ जाए। हम पूरी तरह सावधानी के साथ वर्तमान संविधान को तंत्र-मुक्त करने और नई व्यवस्था के प्रारूप पर चर्चा करने, इन दोनों मार्गों पर एक साथ काम कर रहे हैं। मां संस्थान इस दिशा में काफी गंभीर है।

10- भारतीय राजनीति में विपक्ष की भूमिका और चुनौतियाँ

वर्तमान दुनिया की राजनीति में दो ही लोग ऐसे घमंडी दिख रहे हैं, जिनके बड़बोलेपन से दुनिया डर रही है। एक हैं अमेरिका के राष्ट्रपति ट्रंप और एक हैं भारत में विपक्ष के नेता राहुल गांधी। अभी हम ट्रंप के बारे में चर्चा नहीं कर सकते, लेकिन राहुल के बारे में साफ हो गया है कि वर्तमान समय में सारी संवैधानिक संस्थाएं उनसे डर रही हैं, क्योंकि राहुल जिसके पीछे पड़ जाएगा, उसे बर्बाद कर देगा। ना राहुल को सत्य से मतलब है, ना बदनामी से, ना किसी नुकसान से मतलब है। राहुल का मतलब है अपने आतंक से भयभीत करना। राहुल कितना बड़ा मूर्ख है, यह आप इसी बात से समझ सकते हैं कि राहुल ने चुनाव आयोग को चुनौती दी है और पूछा कि चुनाव आयोग कौन होता है जो राहुल से प्रमाण मांग सकता है। राहुल ने घमंड में यह भी कह दिया कि "मैं संसद में विपक्ष का नेता हूं, मेरा संवैधानिक अधिकार है।" अब इस व्यक्ति को यह भी नहीं पता कि चुनाव आयोग एक संवैधानिक संस्था है, जबकि विपक्ष कोई संवैधानिक संस्था नहीं है। जहां तक स्थिति है, राहुल को कोई सरकारी पद है, यह अलग बात है। उसे संसद में विपक्ष का नेता घोषित किया गया है, जो एक संसदीय पद है, जबकि चुनाव आयोग कोई पद नहीं है; यह संवैधानिक संस्था है। लेकिन आज भारत में यह स्थिति है कि राहुल की मूर्खता से सभी डरते हैं। राहुल ने मीडिया में 13 लोगों के नाम ऐलान किए और मीडिया को इतना डरा दिया कि मीडिया अब उनके बारे में कुछ बोलना ही नहीं चाहता। राहुल ने अभी एक सप्ताह पहले सुप्रीम कोर्ट के बारे में टिप्पणी की और सुप्रीम कोर्ट को भी डरा दिया। बेचारा सुप्रीम कोर्ट भी राहुल के सामने चुप रह गया। राहुल कभी संसद नहीं चलने देते, चाहे राज्यसभा हो या लोकसभा। किसी भी विपक्षी नेता में हिम्मत नहीं है जो राहुल को कह सके कि "संसद चलने दो।"

महाराष्ट्र में, मराठी के नाम पर कुछ गुंडे किसी को भी पीट देते हैं, और इस प्रकार का भय राजनीतिक और सामाजिक स्थिति को प्रभावित करता है। बंगाल में कुछ मुसलमान ऐसे हैं जो किसी भी व्यक्ति को पीड़ित कर सकते हैं। उत्तर प्रदेश में खुलेआम कहा जाता है कि मुसलमान और यादव ही राज्य में शासन करेंगे और अन्य जाति या धर्म का कोई अस्तित्व नहीं है। किसी की हिम्मत नहीं है कि इस प्रकार की गुंडागर्दी को चुनौती दे सके। बिहार में भी लोग खुलकर नहीं बोल पा रहे हैं। सारे देश में पाकिस्तान, बांग्लादेश और म्यांमार से आए हुए अवैध मुसलमानों के पक्ष में धमकाया जा रहा है। न चुनाव आयोग बोल पा रहा है, न संसद, और न ही कोई अन्य। इसका एक कारण यह भी है कि विपक्ष का नेता राहुल गांधी है। भारत में जो लोग सांप्रदायिक या जातीय हिंसा करते हैं, उन्हें भरोसा है कि उनका विपक्ष में नेतृत्व राहुल गांधी हैं। कोई ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो समझा सके कि विपक्ष कोई संवैधानिक संस्था नहीं है; इसे संसदीय पद दिया गया है। मैं भारत की आम जनता को सावधान करना चाहता हूँ कि मूर्खता और घमंड का एक साथ होना समाज के लिए बहुत घातक हो सकता है।

11- भ्रष्टाचार, घुसपैठ और नेहरू खानदान की राजनीति

कर्नाटक में एक कांग्रेस विधायक के घर और कार्यालय पर छापा मारा गया। उस छापे में 12 करोड़ रुपए नगद और 6 करोड़ के जेवरात मिले हैं। इसके अतिरिक्त और भी संपत्ति अभी खुलनी बाकी है। कुल 17 तिजोरी बंद की गई हैं। कुछ दिन पहले ही नरेंद्र मोदी ने गया में घोषणा की कि हम पूरी तरह से भ्रष्टाचार को समाप्त करेंगे। जो सांसद, विधायक या मंत्री पावर का दुरुपयोग करके चोरी कर रहे हैं, उन्हें हम बेदखल करेंगे। नेहरू खानदान ने इस घोषणा का विरोध करते हुए कहा कि इस योजना का दुरुपयोग हो सकता है। आश्चर्य की बात यह है कि पिछले 70 वर्षों तक जो भ्रष्टाचार बढ़ा, उसे नेताओं ने दुरुपयोग नहीं किया, लेकिन अब अगर कोई जेल जाएगा, तो दुरुपयोग हो सकता है। साथ ही कल नरेंद्र मोदी ने यह भी कहा कि जो लोग विदेश से भारत में चोरी-छिपे आए हैं, उन्हें देश से बाहर किया जाएगा। इसके जवाब में नेहरू परिवार ने खुलकर कहा कि आपको डरने की कोई जरूरत नहीं है, आप भारत के नागरिक हैं और आपको कोई नहीं निकाल सकता। नरेंद्र मोदी ने अपने संघ और बीजेपी के कार्यकर्ताओं से निवेदन किया कि हमें अच्छे कार्यों के माध्यम से अपनी लकीर बढ़ानी चाहिए, दूसरों की लकीर को मिटाना नहीं। आप सोचिए, जिस प्रकार नरेंद्र मोदी ने यह तीन बातें घोषित की हैं, इस स्थिति में अगर मैं उनका और मोहन भागवत का समर्थन न करूं, तो किसका करूं? क्या मैं नेहरू परिवार, साम्यवाद या इस्लामिक कट्टरवाद का समर्थन करूं? कल ही भारत सरकार ने संयुक्त राष्ट्र में यह कहकर सनसनी फैला दी कि दुनिया में जितने भी आतंकवादी हैं, उनमें अधिकांश मुसलमान क्यों हैं। इस सवाल पर राहुल गांधी चुप हैं, क्योंकि उनका समर्थन सांप्रदायिक मुसलमानों के पक्ष में है।

आज भारत इस बात से चिंतित है कि विदेश से आए कट्टरवादी मुसलमान देश में अपराध फैला रहे हैं और उन्हें 70 वर्षों तक नेहरू खानदान का समर्थन मिलता रहा। आज भी नेहरू खानदान इस तरह के कट्टरवादी मुसलमानों के पक्ष में खड़ा हो जाता है। जांच में पाया गया कि तीन ऐसे मुसलमान पकड़े गए हैं, जिनके नाम नई मतदाता सूची में भी हैं। उनके पास आधार कार्ड और सभी प्रमाण मौजूद हैं। यह लोग 70 साल पहले भारत में 2 साल के लिए वीजा लेकर आए थे और उसके बाद यहां के निवासी बन गए। यदि नेहरू आज नहीं हैं, तो नेहरू का खानदान आज भी जीवित है। उन्हें यह स्पष्ट करना चाहिए कि 70 वर्षों तक यह लोग भारत के निवासी कैसे रहे, जबकि उनका वीजा केवल दो वर्ष के लिए था। अब उनके बेटे और पोते भी भारत के नागरिक बन गए होंगे। मैं आपको स्पष्ट कर दूँ कि इसी तरह नेहरू खानदान की मदद से भारत में मुसलमानों की संख्या इतनी तेज़ी से बढ़ी है।

12- राजनीतिक परिवर्तन की धीमी गति और अस्थायी समाधान का प्रस्ताव

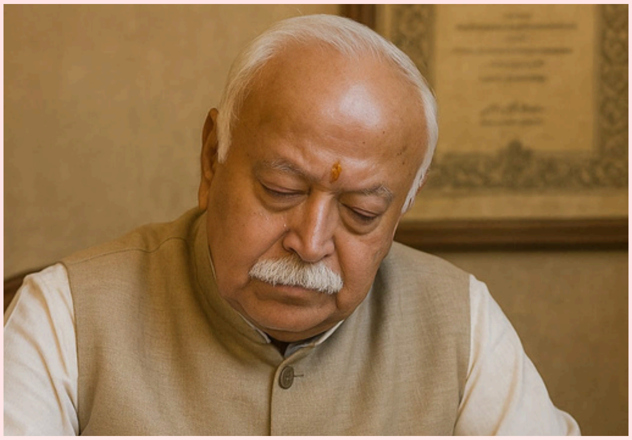

मुझे ऐसा आभास होता है कि जिस गति से भारत में राजनीतिक बदलाव दिख रहा है, वह गति बहुत धीमी है। इस गति से तो बदलाव आने में और आम जनता को परिणाम देखने में 20-30 वर्ष लग जाएंगे। तब तक जनता का धैर्य टूट भी सकता है। क्योंकि साम्यवाद, इस्लाम और नेहरू परिवार का गठजोड़ आम जनता की आवाज सुनने के लिए तैयार नहीं है और वर्तमान संविधान को ढाल बनाकर वह बदलाव में बाधाएं पैदा कर रहा है। इसके समाधान के लिए मेरे मन में एक प्रस्ताव है। उस प्रस्ताव के अनुसार, भारत में अगले तीन वर्षों के लिए राष्ट्रपति शासन लागू किया जाना चाहिए। इसके लिए राष्ट्रपति के रूप में मोहन भागवत जी को नियुक्त किया जाना चाहिए। तीन वर्षों के लिए वर्तमान संविधान को भी सस्पेंड कर दिया जाए। जो संविधान सन 1950 में लागू हुआ था, उसमें भागवत जी आवश्यकतानुसार कुछ संशोधन स्वीकार कर सकते हैं। अर्थात्, वर्तमान संविधान में 1950 के बाद जो संशोधन हुए हैं, उनमें से आवश्यक संशोधन रखकर अन्य सभी संशोधन तीन वर्षों के लिए निलंबित कर दिए जाएं। इस तरह भारत में लोकतंत्र का एक संशोधित स्वरूप सामने आएगा। मुझे विश्वास है कि मोहन भागवत जी इस नए लोकतांत्रिक प्रारूप में वर्तमान समय के अनुसार एक अच्छी व्यवस्था स्थापित करने में सफल होंगे। नेहरू परिवार पूरे देश में अराजकता की परिस्थितियां पैदा करने की कोशिश कर रहा है। पूरा देश जानता है कि नेहरू परिवार की नागरिकता और विश्वसनीयता संदिग्ध रही है, और हम किसी एक परिवार को अपने पॉकेट में संविधान रखकर ढाल बनाने की अनुमति नहीं दे सकते। इसलिए राहुल गांधी के नियंत्रण से संविधान को छीनकर भागवत जी के हाथ में देना चाहिए। मोहन भागवत जी उस समय के संविधान में कोई मनमाना बदलाव नहीं कर सकेंगे; वे केवल अनावश्यक संशोधनों को तीन वर्षों के लिए निलंबित कर सकते हैं।

13- शरीफ, समझदार और चालाक

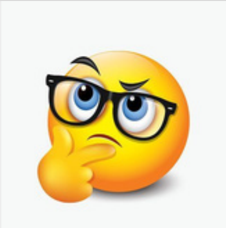

व्यक्ति तीन प्रकार के होते हैं: एक होते हैं शरीफ, एक होते हैं समझदार और एक होते हैं चालाक। इन तीनों में एक खास फर्क होता है। चालाक व्यक्ति “लेकिन” शब्द का अपने स्वार्थ के लिए उपयोग करता है। शरीफ व्यक्ति जो भी बोलता है, वह साफ-साफ बोलता है और आमतौर पर “लेकिन” का उपयोग नहीं करता। समझदार व्यक्ति परिस्थिति अनुसार “लेकिन” शब्द का उपयोग करता है। चालाक लोग हमेशा “लेकिन” के बाद वास्तविक अर्थ को बदल देते हैं। उदाहरण के लिए:

·मैं देख रहा हूँ कि उत्तराखंड का विकास तेज गति से होना चाहिए, लेकिन पर्यावरण को क्षति न हो।

·बस्तर के आम लोगों का विकास बहुत तेज गति से होना चाहिए, लेकिन आदिवासियों की मूल संस्कृति की पूरी सुरक्षा आवश्यक है।

·भारतीय संविधान के अनुसार धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्र, लिंग, उम्र या अन्य किसी आधार पर किसी व्यक्ति के साथ भेदभाव नहीं होना चाहिए, लेकिन इसका पूरा अर्थ बदल दिया गया।

·आवारा पशु व्यक्तियों को नुकसान पहुंचा रहे हैं, लेकिन पशुओं के साथ मानवता का व्यवहार अवश्य किया जाए।

हमारे छत्तीसगढ़ के एक सांसद, बृजमोहन अग्रवाल, जिन्हें योग्य और चालाक माना जाता है, उन्होंने भी कहा कि छत्तीसगढ़ का विकास होना चाहिए, लेकिन पर्यावरण को किसी तरह नुकसान ना हो। विचित्र बात यह है कि यह सारी बातें पूरी तरह असंभव हैं। इनमें से कोई भी बात “लेकिन” के बाद उचित नहीं है। हमारे देश के कई नेता “लेकिन” लगाकर मूल अर्थ को बदलने में अपनी चालाकी समझते हैं। अब समय आ गया है कि हम “लेकिन” के बाद चालाकी करने वालों का पर्दाफाश करें। जब तक हम ऐसे चालाक लोगों से स्पष्ट नहीं होंगे और उन्हें किनारे नहीं करेंगे, तब तक समाज की वास्तविक समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता। इन लोगों के पास कोई वास्तविक प्रस्ताव या सुझाव नहीं है; इन्हें केवल “लेकिन” लगाकर वास्तविक अर्थ को अनुपयोगी बनाना आता है।

14- आदर्श मान्यता और वास्तविकता का टकराव

हम आम तौर पर व्यक्ति को उसकी वास्तविक की योग्यता से कई गुना अधिक मानकर उसकी योग्यता निर्धारित करते हैं। तो हमें उस व्यक्ति के अंदर कई प्रकार की गलतियां दिखने लगती हैं। उदाहरण के लिए, हम बाबा रामदेव को जब सन्यासी मान लेते हैं, तो हमें ऐसा दिखता है कि बाबा रामदेव अनेक प्रकार की गलतियां कर रहे हैं। हम बाबा रामदेव की आलोचना करने लगते हैं क्योंकि हम उन्हें एक आदर्श सन्यासी के रूप में देखते हैं। लेकिन जब हम बाबा रामदेव को एक व्यापारी के रूप में देखते हैं, तो हमें बाबा रामदेव एक आदर्श व्यापारी दिखता है, क्योंकि अन्य व्यापारियों की तुलना में रामदेव बहुत अच्छा कार्य कर रहे हैं और अन्य अनेक सन्यासियों की तुलना में बाबा रामदेव का कार्य कमजोर है। इसी तरह, हम योगी आदित्यनाथ को जब धर्मगुरु बोल लेते हैं, तो हमें उनमें अनेक बुराइयां दिखती हैं, लेकिन जब हम योगी आदित्यनाथ को राजनेता मान लेते हैं, तो हमें योगी आदित्यनाथ में सब प्रकार की अच्छाइयां दिखने लग जाती हैं। वास्तव में ना बाबा रामदेव गलत हैं, ना योगी आदित्यनाथ गलत हैं। गलत है हमारी मान्यता। इसी तरह, जब हम गांधी को भगवान मान लेते हैं, तो हमें गांधी में अनेक प्रकार की कमजोरियाँ दिखने लगती हैं, और जब हम गांधी को एक महापुरुष मानने लग जाते हैं, तो हमें गांधी में अनेक प्रकार की अच्छाइयां दिखने लगती हैं। क्योंकि यह स्वाभाविक है कि गांधी ने कई प्रकार की गलतियां भी की हैं, लेकिन गलतियों की तुलना में अनेक अच्छाइयां भी की हैं।

इसलिए मैं अपने जीवन में बचपन से ही सावधान रहा कि मैं कभी बचपन में अपने आप को सत्यवादी, ईमानदार, चरित्रवान घोषित नहीं किया। मैंने अपने आप को “दो नंबर का आदमी” घोषित किया, जिसमें अनेक प्रकार की गलतियां हैं। मैंने यह खुले आम कहा कि मैं स्थिति अनुसार झूठ बोलता हूँ, स्थिति अनुसार भ्रष्टाचार करता हूँ, स्थिति अनुसार चालाकी करता हूँ। मैं हमेशा यह घोषित किया कि वेश्यावृत्ति, ब्लैक तस्करी, झूठ बोलना तब तक कोई अपराध नहीं है जब तक हमारी नीयत ठीक है। मैं हमेशा यह प्रयास किया कि वास्तविकता से मेरी छवि समाज में कमजोर बनी रहे, वास्तविकता से अधिक नहीं। यही कारण है कि आज समाज में अनेक लोग अपनी वास्तविकता से ऊँची छवि बताते रहते हैं और फंस जाते हैं। यही कारण है कि संन्यास आश्रम में होते हुए भी मैं अपने आप को सन्यासी घोषित नहीं करता। क्योंकि सन्यासी घोषित करने के बाद मुझे बहुत नुकसान होगा, और यदि मैं बिना घोषित किए सन्यासी बना रहूंगा, तो उससे मुझे बहुत लाभ होगा। मैं अपने सभी साथियों को सलाह देता हूँ कि अपनी वास्तविक स्थिति की तुलना में अपने आचरण को कभी भी ऊँचा बताने की कोशिश मत करें। या तो आप उससे कुछ नीचे बताइए, या वास्तविकता तक सीमा बनाकर रखिए। क्योंकि यदि आपने उंचा बताने का प्रयास किया, तो आपका भविष्य खतरे में पड़ सकता है।

15- गांधी हत्याः इतिहास के छिपे सच और नेताओं की भूमिका

गांधी की हत्या के महत्वपूर्ण कारणों पर यदि गंभीरता से विचार किया जाए, तो मैं इस बात से पूरी तरह सहमत हूँ कि नाथूराम गोडसे एक बहुत बड़ा देशभक्त था। नाथूराम गोडसे की देशभक्ति पर कभी कोई संदेह नहीं रहा। यह बात भी सच नहीं है कि नाथूराम गोडसे को किसी ऊपर की संस्था ने हत्या करने का निर्देश या आदेश दिया था। लेकिन मुझे पूरा विश्वास है कि गांधी की हत्या में लॉर्ड माउंटबेटन, सावरकर, नेहरू, अंबेडकर, जिन्ना–इन सबकी कुछ न कुछ भूमिका अवश्य थी, क्योंकि कोई भी राजनेता गांधी को पसंद नहीं करता था। मेरे विचार से गांधी हत्या का कोई भी आधार विभाजन का नहीं है, हिंदू-मुसलमान के टकराव का नहीं है। क्योंकि लॉर्ड माउंटबेटन, जो भारत विभाजन के सबसे बड़े सूत्रधार थे, उनके साथ जिन्ना, नेहरू, सावरकर, अंबेडकर सबसे अच्छे संपर्क में थे। सबके साथ बैठकर लॉर्ड माउंटबेटन विभाजन की योजनाएँ बनाते थे। इसका मतलब है कि कहीं भी विभाजन में गांधी हत्या का मामला जुड़ा हुआ नहीं था। लेकिन देश के सभी नेता, जिनमें सरदार पटेल भी शामिल थे, इस बात से सहमत नहीं थे कि गांधी के ग्राम स्वराज अथवा समाज की स्वतंत्रता का किसी भी रूप में समर्थन किया जाए। क्योंकि स्वतंत्रता की सारी लड़ाई नेताओं के लिए राष्ट्रीय स्वतंत्रता तक थी, एक केंद्रित सत्ता तक थी, और गांधी सामाजिक स्वतंत्रता की बात कर रहे थे। यही कारण था कि सब लोग मिलकर अप्रत्यक्ष रूप से गांधी का विरोध करते थे, और उस विरोध का अप्रत्यक्ष प्रभाव गोडसे पर विभाजन के रूप में आया।

गांधी से मुक्ति पाने के लिए माउंटबेटन समेत सभी नेताओं के दिमाग में एक ही बात थी कि विभाजन की घोषणा होते ही गांधी अनशन करेंगे, और अनशन करके मर जाएंगे। सांप भी मर जाएगा, लाठी भी नहीं टूटेगी। लेकिन जब गांधी नहीं मरे और उन्होंने विभाजन स्वीकार कर लिया, तब गोडसे पर वैचारिक प्रभाव डालने की शुरुआत हुई। गोडसे ने विभाजन का दोष गांधी को माना, क्योंकि गोडसे कोई विचारक नहीं था, चिंतक नहीं था। वह किसी विचारधारा से प्रेरित था–एक ऐसी विचारधारा से, जो प्रत्यक्ष रूप से विभाजन का विरोध करती थी और अप्रत्यक्ष रूप से गांधी का विरोध करती थी। उसको विभाजन से कोई लेना-देना नहीं था। यही कारण है कि गांधी हत्या होते ही सब लोगों ने मिलकर यह जानते हुए कि भारत के

विभाजन में गांधी की कोई भूमिका नहीं है, फिर भी सब ने अप्रत्यक्ष रूप से विभाजन का दोष गांधी को बता दिया। और इन पांचों में से किसी ने सामने आकर यह बात कहना उचित नहीं समझा कि विभाजन में गांधी का कोई दोष नहीं है। इस हत्याकांड में सबको डर था कि गांधीवादी पोल खोल देंगे, लेकिन नेहरू ने गांधीवादियों को जमीन, पैसा और कुछ समझा-बूझाकर सबका मुंह बंद कर दिया। और इसलिए आज तक यह प्रचार कायम है कि विभाजन के लिए गांधी दोषी थे। पिछले दिनों मैं लिखा था–एक आदमी के मुंह से एक भी शब्द नहीं निकला कि विभाजन के लिए पटेल ने क्या किया, विभाजन के विरोध में किसी अन्य नेता ने क्या किया। आज भी सारे नेताओं के चमचे इस बात को खुलकर कहते हैं कि गांधी को अनशन करके मर जाना चाहिए था। कोई नेता यह नहीं कहता कि पटेल ने अनशन क्यों नहीं किया, नेहरू ने अनशन क्यों नहीं किया। कोई यह प्रश्न नहीं करता कि सावरकर ने क्या किया। कोई यह प्रश्न नहीं करता कि गोडसे ने जिन्ना को क्यों नहीं मारा, नेहरू को क्यों नहीं मारा, गांधी को क्यों मारा। क्योंकि यह नेहरू, जिन्ना, सावरकर, अंबेडकर सब लॉर्ड माउंटबेटन की टीम में शामिल थे, और गांधी उस टीम से बाहर थे। इतने वर्षों के बाद हम लोगों ने यह हिम्मत की है कि हम सत्य को सामने लाएंगे। हम राजनीतिक नेताओं से समाज को मुक्त कराएंगे। हम गांधी हत्या में दोषी राजनेताओं को बेनकाब करेंगे। हम पेशेवर गांधीवादियों को भी बेनकाब करेंगे।

हम स्वामी दयानंद को मानने वाले हैं। हम श्रद्धानंद को मानने वाले हैं। हम लाजपत राय, भाई परमानंद, नारायण स्वामी के भक्त हैं। हम सत्य को सामने लाकर रहेंगे, और मैंने आपको आश्वासन दिया है कि हम समाज को राजनीतिक गुलामी से मुक्त कराएंगे। गांधी की हत्या का कोई कारण पाकिस्तान या हिंदू-मुस्लिम विवाद नहीं था। गांधी हत्या का सिर्फ एकमात्र कारण यह था कि गांधी राष्ट्रीय स्वतंत्रता को एक बीच का पड़ाव मानते थे और स्वतंत्रता के तत्काल बाद में सामाजिक स्वतंत्रता के पक्षधर थे, जबकि स्वतंत्रता संग्राम में लगे हुए सभी नेता राष्ट्रीय स्वतंत्रता को अंतिम उपलब्धि मान रहे थे। उन्हें सामाजिक स्वतंत्रता नहीं देनी थी। इसलिए जब स्वतंत्रता मिलने की संभावना हुई, तो सब ने मिलकर लॉर्ड माउंटबेटन के साथ गांधी के विरुद्ध षड्यंत्र किया। मेरा यह आरोप बहुत गंभीर था, लेकिन आपने देखा कि लंबी चर्चा के बाद भी किसी एक भी व्यक्ति ने इसके पक्ष या विपक्ष में कोई बात नहीं लिखी। यदि कोई एक भी व्यक्ति पक्ष या विपक्ष में कुछ लिखता, तो मुझे भी सोचने और समझने का अवसर मिलता। मुझे भी कुछ नई जानकारी होती। लेकिन दुर्भाग्य है कि राजनीतिक नेताओं के सभी दलाल, चाहे वे किसी भी राजनीतिक दल से जुड़े हों, किसी ने मेरे लिखे इस प्रश्न का उत्तर देना उचित नहीं समझा।

मैं फिर से निवेदन करता हूँ कि गांधी का व्यक्तिगत जीवन क्या था, यह मेरा आशय नहीं है। गांधी किसके तरफ झुके हुए थे, किससे नफरत करते थे, यह भी मेरा आशय नहीं है। मेरा आशय सिर्फ इतना ही है कि गांधी लोकस्वराज्य के पक्षधर थे और सारे नेता राष्ट्रीय स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ रहे थे, और सभी नेता स्वतंत्रता के बाद गांधी को अपने स्वार्थ पूर्ति में बाधक मान रहे थे। मैं जानता हूँ कि अब जो नई स्वतंत्रता की लड़ाई शुरू होने वाली है, इस संघर्ष में भी ऐसी ही बातें सामने आएंगी।

मेरे कुछ मित्रों को ऐसा लगा कि मैं गांधी को फिर से भारत में स्थापित करने का प्रयास कर रहा हूं। मैं आपको स्पष्ट कर दूँ कि मैं गांधीवादी नहीं हूँ। मेरा कोई उद्देश्य ऐसा नहीं है कि मैं गांधी के पीछे चलूँ। क्योंकि कोई विचारक किसी महापुरुष के पीछे कभी नहीं चलता, बल्कि वह सभी महापुरुषों से कुछ सीखता है और नया मार्ग खोजता है। इसलिए मेरा उद्देश्य गांधी को स्थापित करना नहीं है। मेरा उद्देश्य यह है कि समाज में अहिंसा स्थापित हो, सत्य स्थापित हो। वर्तमान समय में भारत में हिंसा स्थापित हो गई है। हमारे धर्मगुरुओं का काम था कि वह समाज में सांस्कृतिक जनजागरण करें, लेकिन हमारे धर्मगुरु धर्मगुरु के नाम पर समाज में हिंसा का समर्थन कर रहे हैं। वह हिंदू राष्ट्र की आवाज उठा रहे हैं, जबकि हिंदू राष्ट्र की आवाज नहीं, हिंदू समाज की आवाज उठानी चाहिए थी। यह हमारे कैसे धर्मगुरु हैं, जो दिन-रात समाज में "हिंसा, हिंसा" की बात कर रहे हैं, और कथित धर्मगुरु सुभाष चंद्र बोस, भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद, सावरकर को गांधी से अधिक महत्व दे रहे हैं। विचित्र धर्मगुरु हैं हमारे।

इसलिए मेरे जैसे विचारकों का यह दायित्व बनता है कि हम समाज में वर्तमान समय में बढ़ती हिंसा से समाज को बचाएँ। हम समाज का "गर्म खून" ठंडा कर दें। हम धर्मगुरुओं को मजबूर कर दें कि वह हिंदू राष्ट्र की नहीं, हिंदू समाज की आवाज बुलंद करें। हम इस बात का लगातार प्रयास कर रहे हैं कि सत्ता नहीं, समाज व्यवस्था को मजबूत होना चाहिए। विचारकों का सत्ता पर महत्वपूर्ण प्रभाव होना चाहिए। वर्ण व्यवस्था को फिर से कर्म के आधार पर जीवित किया जाना चाहिए। आप विचार करें कि यह कार्य अगर हम नहीं करेंगे तो कौन करेगा। हमें राजनेताओं से कोई उम्मीद नहीं है। हमें धर्मगुरुओं से कोई उम्मीद नहीं है। हमें उम्मीद है विचारकों से। इसलिए मैंने आपको यह स्पष्ट किया कि हमारा कोई उद्देश्य किसी महापुरुष के पीछे आँख बंद करके चलने का नहीं है।

16- नई समाज व्यवस्था की ओर: तीन दिशाओं में हमारी सक्रियता

नई समाज व्यवस्था को एक जन जागरण का रूप देने के लिए हम लोगों ने तीन अलग-अलग दिशाओं से कार्य प्रारंभ किया है।

पहली दिशा: राज्य कमजोरी करण। इसके लिए पिछले तीन-चार महीनों से ज्ञान केदो के माध्यम से कार्य प्रारंभ कर दिया गया है।

दूसरी दिशा: समाज सशक्तिकरण। यह कार्य भी हम लोगों ने करीब तीन महीने पहले शुरू किया है। दोनों कार्य धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे हैं।

तीसरी दिशा: विचार मंथन सभा। इस सभा का कार्य भी अब शुरू किया जा रहा है। इसकी योजना मैंने तीन-चार दिन पहले प्रस्तुत की थी कि हम एक संविधान सभा बना रहे हैं और इस संविधान सभा के संचालन में स्वतंत्र विचार मंथन को प्रोत्साहित किया जाएगा।

कल एक प्रसिद्ध मीडिया संस्थान के प्रमुख, रामवीर श्रेष्ठ जी ने मुझे फोन करके यह जानकारी मांगी कि इस सभा से जुड़ने वालों की योग्यता का मापदंड क्या होगा। मैंने उन्हें बताया कि किसी भी प्रकार की कोई योग्यता का मापदंड नहीं है। संविधान सभा से जुड़ने के लिए प्रत्येक सदस्य को वर्ष में कम से कम एक बार संविधान सभा की बैठक अटेंड करनी होगी। संविधान सभा अपनी कार्यप्रणाली और सक्रियता स्वयं तय करेगी। संविधान सभा का प्रमुख कार्य स्वतंत्र विचार मंथन को जागृत करना होगा। प्रतिदिन होने वाली डेढ़ घंटे की रात्रिकालीन चर्चा की पूरी व्यवस्था संविधान सभा करेगी और उसका संचालन भी संविधान सभा करेगी। इस चर्चा में जुड़ने वाला प्रत्येक सदस्य अपने आप को स्थिति अनुसार गुरु भी समझेगा और शिष्य भी। अर्थात् इस सभा का प्रत्येक सदस्य प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्र सोच और तर्क शक्ति को जागृत करेगा और अपनी भी तर्क शक्ति जागृत करेगा। संविधान सभा का मुख्य उद्देश्य यह होगा कि समाज में प्रत्येक व्यक्ति शराफत की तुलना में समझदारी की दिशा में आगे बढ़े। इसके लिए श्रद्धा और तर्क अथवा संस्कार और विचार के बीच समाज में संतुलन विकसित करना होगा। हमारे संविधान सभा का मुख्य उद्देश्य यही है। इसलिए हमने यह निश्चय किया है कि संविधान सभा के लिए किसी प्रकार की कोई योग्यता का मापदंड नहीं होगा। अब हम लोगों ने अपनी सक्रियता के तीनों दिशाओं की कार्यप्रणाली बता दी है और कार्य प्रारंभ कर दिया है। मैं आपको स्पष्ट कर दूँ कि संविधान सभा का सदस्य कोई भी व्यक्ति बन सकता है।

17- प्रचार बनाम बौद्धिक शक्ति: आज की सबसे बड़ी चुनौती

वर्तमान दुनिया में प्रचार की शक्ति बहुत अधिक बढ़ गई है। प्रचार को एक महत्वपूर्ण व्यापार बना दिया गया है। प्रचार माध्यमों का उपयोग करके असत्य को सत्य के समान स्थापित कर दिया जा रहा है और इस तरह प्रचार का व्यापार लगातार बढ़ता जा रहा है। यह मामला सिर्फ भारत का नहीं है, बल्कि सारी दुनिया का है। लेकिन प्रचार का महत्व क्यों बढ़ता है? इसका कारण यह है कि जब समाज में बौद्धिक शक्ति घटती जाती है और भावनाएँ बढ़ती हैं, तब प्रचार का महत्व बढ़ना शुरू हो जाता है। तर्कशील लोग या समझदार लोग प्रचार से प्रभावित नहीं होते; केवल भावना प्रधान लोग प्रभावित होते हैं। जब से समाज में समझदारी घटी है, तब से प्रचार का महत्व बढ़ता जा रहा है। इस बात को हम लोगों ने बहुत गहराई से समझा। मुझे अच्छी तरह जानकारी है कि हम लोगों ने कभी भी प्रचार का सहारा नहीं लिया और कभी मीडिया ने हमारा साथ नहीं दिया। क्योंकि मीडिया एक व्यापार है, और हम उस व्यापार का प्रयोग न करना चाहते थे, ना कर पाए। मीडिया ने जीवन भर हमारा बहिष्कार किया, लेकिन मैं यह महसूस करता हूँ कि मीडिया का यह बहिष्कार हमारे लिए जितना घातक हुआ, उतना ही लाभदायक भी साबित हो रहा है। यदि हम मीडिया का सहारा अधिक लेते, तो हो सकता है कि हम वैचारिक दृष्टि से इतना आगे नहीं बढ़ पाते जितना अब बढ़ सके हैं। क्योंकि प्रचार माध्यमों का सहारा लेने के बाद चिंतन शक्ति का महत्व घट जाता है। अब जब सोशल मीडिया आ गया है, तब सोशल मीडिया के माध्यम से हम अपनी बात को आगे बढ़ाने में सफल हो रहे हैं और पेशेवर मीडिया हमें रोक नहीं पा रहा है। इसलिए हम सब मिलकर वैचारिक शक्ति के महत्व को आगे लाएँ। हमारे धर्मग्रंथ कहते हैं—"बुद्धिर्यस्य बलम् तस्य"। शारीरिक शक्ति की तुलना में बौद्धिक शक्ति का महत्व ज्यादा है। इसलिए अब हमें भावनात्मक दिशा में काम करने की बजाय बौद्धिक दिशा की ओर तेज गति से बढ़ना चाहिए।

18- न्यायिक तानाशाही बनाम सामाजिक न्याय पंचायत

हमें समाज और राज्य के बीच बढ़ी हुई असीमित दूरी को कम करना ही होगा। न्याय के मामले में भी यह दूरी बहुत अधिक बढ़ गई है। अधिक का मतलब असीमित है। न्याय का सारा मामला सुप्रीम कोर्ट ने अपने पास इकट्ठा कर लिया है और देश में अप्रत्यक्ष रूप से न्यायिक तानाशाही चल रही है। हमें इसका समाधान खोजना ही होगा। इस न्यायिक तानाशाही की शुरुआत स्वतंत्रता के तत्काल बाद ही नेहरू ने कर दी थी। पंडित नेहरू ने अपने व्यक्तिगत तानाशाही स्थापित करने के लिए हमारी सामाजिक न्याय व्यवस्था पर अंकुश लगाना शुरू कर दिया। अंग्रेजों के काल में पंचायतों को न्यायिक अधिकार भी दिए गए थे। सन 1946 में राज्य पंचायत को कानूनी अधिकार दिए गए थे। इसका अर्थ यह है कि स्वतंत्रता से पहले तक हमारे स्थानीय न्याय पंचायतें छोटे-छोटे अपराधों पर स्थानीय रूप से निर्णय कर लेती थीं। इन निर्णयों में वकीलों का कोई दखल नहीं होता था। ऐसे निर्णय तत्काल होते थे और इस प्रकार के फैसलों की कोई अपील नहीं होती थी। पंचायती निर्णय में पाँच सदस्य होते थे, जिन्हें पाँच वर्ष के लिए जनता द्वारा नियुक्त किया जाता था। इन्हें 50 मूल रुपये अर्थात ₹10,000 तक दंड देने का अधिकार होता था। हर छोटे अपराधी या सिविल मामले इस पंचायत में देखे जाते थे और इन पंचायतों के निर्णय की कहीं कोई अपील नहीं होती थी। यह पंचायती व्यवस्था 1960 तक अपना काम करती रही। 1960 के बाद धीरे-धीरे सारी शक्ति नेहरू ने अपने पास समेट ली और न्याय पंचायत के अधिकार भी छीन लिए। आज उसका परिणाम आप देख रहे हैं—न्याय व्यवस्था ओवरलोडेड और अविश्वसनीय हो गई है। हमें फिर से अपनी पुरानी न्यायिक व्यवस्था के विषय में गंभीरता से सोचना पड़ रहा है। मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि हम सामाजिक न्याय पंचायत को फिर से मजबूत करें और अपनी सरकार को मजबूर कर दें कि वह न्यायिक तानाशाही से हटकर न्याय को अधिकतम विकेंद्रित करे।

मुझे ऐसा महसूस हुआ कि अंग्रेजों के विषय में मेरी अब तक यह धारणा थी कि अंग्रेजों ने हमारी पंचायती न्याय व्यवस्था को ध्वस्त किया। लेकिन अब मुझे यह पता चला कि अंग्रेजों ने ऐसा कुछ गलत नहीं किया था। आज की जानकारी के अनुसार, अंग्रेजों ने हमारी पंचायती न्याय व्यवस्था को मजबूत किया था। स्वतंत्रता से पहले ही उन्होंने कानून बनाया था कि कुछ गांवों को मिलाकर एक न्याय पंचायत बनेगी और उस न्याय पंचायत को अपराधिक या दीवानी छोटे-छोटे मामलों में निर्णय करने का स्वतंत्र अधिकार होगा। स्वतंत्रता के 10 वर्ष बाद, हमारे प्रधानमंत्री नेहरू जी और अंबेडकर दोनों ने मिलकर हमारी पंचायती न्याय व्यवस्था को ध्वस्त किया और सरकारी न्याय व्यवस्था को मजबूत करने का प्रयत्न किया। उसी का आज परिणाम है कि हमारी पंचायती न्याय व्यवस्था भी ध्वस्त हो गई और सच्चाई यह है कि न्याय व्यवसाय पूरी तरह ध्वस्त हो गया। आप इस विषय पर गंभीरता से सोचिए कि क्या पंचायती न्याय व्यवस्था की तुलना में वर्तमान न्याय व्यवस्था कई गुना अधिक घातक नहीं है। मेरा अपना अनुभव यह कहता है कि वर्तमान समय में न्याय व्यवस्था नाम की कोई चीज है ही नहीं। ना इसकी कोई समय सीमा है, ना इसकी कोई विश्वसनीयता है। यह न्याय व्यवस्था अप्रत्यक्ष रूप से अन्याय व्यवस्था बनकर हमारी व्यवस्था के लिए एक बोझ बन गई है। इसलिए मेरा यह सुझाव है कि हम फिर से भारत में पंचायती न्याय व्यवस्था को सशक्त करने की शुरुआत करें।

हमारी पंचायती न्याय व्यवस्था पूरी तरह एक सामाजिक व्यवस्था थी। अंग्रेजों के शासनकाल में इस प्रकार की न्याय पंचायत को संवैधानिक अधिकार प्राप्त था। स्वतंत्रता के 10 वर्ष बाद नेहरू और अंबेडकर ने मिलकर इन न्याय पंचायतों को समाप्त कर दिया। उनका मानना था कि पंचायत में कई लोग बिना पढ़े-लिखे होते हैं और जो लोग पढ़े-लिखे नहीं होते, वे न्याय नहीं कर सकते। यह एक विचित्र तर्क था, लेकिन तानाशाह नेहरू और अंबेडकर ने मिलकर जबरदस्ती भारत की सामाजिक व्यवस्था पर इस प्रकार का मनमाना आदेश थोप दिया और हमें इस आदेश को मानना पड़ा। इस प्रकार सामाजिक व्यवस्था के समाप्त होने के बाद जातीय पंचायतें शुरू हो गईं। खाट पंचायत अपना काम करने लगी। इस प्रकार की पंचायतें दंड भी देने लगीं और न्याय भी करने लगीं। कहीं-कहीं धार्मिक पंचायतें भी शुरू हो गईं, क्योंकि सामाजिक पंचायत का संवैधानिक अधिकार समाप्त कर दिया गया। आज भी नेहरू परिवार बार-बार घोषणा करता है कि पढ़े-लिखे लोग ही सरकार चला सकते हैं, पढ़े-लिखे लोग ही न्याय कर सकते हैं, अपढ़ लोग नहीं। आप विचार करें कि पुराने जमाने में कबीर दास की शिक्षा क्या थी। राम और रावण की शिक्षा की तुलना भी कर सकते हैं। हाल ही में कामराज अल्प शिक्षित थे, उनका भी इतिहास बहुत पुराना नहीं है। नेहरू और अंबेडकर तो बहुत अधिक शिक्षित थे, हो सकता है कि ये दोनों गांधी की तुलना में भी ज्यादा शिक्षित थे। दोनों ने मिलकर देश को बर्बाद कर दिया। यदि आप वर्तमान समय देखें, तो नरेंद्र मोदी की शिक्षा शायद आठवीं तक बताई जाती है। कहां नरेंद्र मोदी और कहां अरविंद केजरीवाल, राहुल गांधी! राहुल गांधी सरीखे बहुत शिक्षित हैं, अरविंद केजरीवाल सरीखा भ्रष्ट मुख्यमंत्री भी कई गुना अधिक शिक्षित है, और प्रधानमंत्री सरीखा अल्प शिक्षित देश की सरकार चला रहा है। मैं आपको यह बताना चाहता हूँ कि शिक्षा और ज्ञान में ज्ञान का महत्व है। मेरे अपने आकलन के अनुसार, देश को शिक्षित लोगों ने जितना अधिक लूटा, अशिक्षित लोगों ने उतना नहीं। वर्तमान भारत में ज्ञान घट रहा है और शिक्षा बढ़ रही है। इसका यही कारण है कि शिक्षा को ज्ञान की तुलना में अधिक प्रोत्साहित किया जा रहा है और उसे महत्वपूर्ण बताया जा रहा है। अब भारत में नई समाज व्यवस्था की शुरुआत होनी चाहिए। सामाजिक न्याय पंचायत को फिर से मजबूत करने की आवश्यकता है। समाज को ज्ञान का महत्व बताने की आवश्यकता है। और समाज को धूर्त लोगों से बचाने की जरूरत है।

19- मानव सभ्यता की जननी और शूद्र संस्कृति की सच्चाई

भारत को मानव सभ्यता की जननी कहा जाता है। इसका अर्थ यह है कि भारत से ही सभ्यता का विकास हुआ होगा। प्राचीन समय में भारत में एक ही जाति होती थी, जिसे शूद्र कहा जाता था। शूद्र का अर्थ होता था श्रमिक। ये सभी लोग खेती करते थे और मांसाहार करते थे। धीरे-धीरे सभ्यताओं का विकास हुआ और विकसित सभ्यताएं "द्विज" कहीं जाने लगीं। यही द्विज बाद में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य बने। इन द्विजों ने वेद और अन्य शास्त्र भी बनाए और लिखा—"जन्मना जायते शूद्र, संस्कारात द्विज उच्यते"। इस तरह शूद्र और द्विज का विभाजन हुआ। द्विज एक से अधिक महिलाओं के साथ संतान उत्पन्न करने लगे। जब शूद्रों में महिलाओं की संख्या कम हुई, तब शूद्रों ने एक से अधिक पुरुषों से भी संतान उत्पन्न करनी शुरू की। इन दोनों संस्कृतियों के अवशेष आज भी भारत में दिखाई देते हैं। स्पष्ट है कि पुराने जमाने में शूद्र संस्कृति भी विकसित थी। अभी हमारे छत्तीसगढ़ में कहीं-कहीं खेतों में इस विकसित शूद्र संस्कृति के अवशेष देखने को मिलते हैं। हमारे कुछ गांवों के किसान अभी भी भागडांड प्रथा को जिंदा रखे हुए हैं। इसमें वे तेंदू लकड़ी की एक दगाल खेतों में गाड़ते हैं और उस दगाल के ऊपरी भाग को चीरकर उसमें भेलवा और शतावर की लकड़ी लगा देते हैं। इस प्रथा से किसी प्रकार के कीड़े खेतों में नहीं आते। इसी तरह, हमारे क्षेत्र के आदिवासियों में महिला प्रधान परिवार व्यवस्था प्रचलित है। हाल ही में हिमाचल प्रदेश में इस तरह की संस्कृति को आदरपूर्वक जिंदा रखा गया। यह संस्कृतियाँ बुराई नहीं हैं, बल्कि यह स्थिति जन्य प्रथा थी। जैसा कि महिलाओं की संख्या घट रही है, वैसे ही द्विजों को भी इस शूद्र संस्कृति को अपनाना पड़ सकता है। अंग्रेजों ने इस संस्कृति को विकृत किया। उन्होंने प्रचारित किया कि भारत के मूल निवासी शूद्र हैं और आर्य बाहर से आए हैं। यह बिल्कुल झूठ है। अंग्रेजों ने हमारी भगडाड़ पद्धति को भी गलत रूप में पेश किया और कहा कि यह क्रॉस का चिन्ह है, जबकि वास्तव में यह किसान अपने खेतों की सुरक्षा के लिए लगाते हैं। इसलिए मेरा निवेदन है कि हम अपने पुराने इतिहास को भी खोजें और उसकी वास्तविकता को समझें।

20- छल और सच के बीच: भारत किस राह पर?

मेरा अपना अनुभव कहता है कि वर्तमान भारत में दो संगठनों ने दिन-रात, 24 घंटे झूठ बोलने का ठेका उठा लिया है। एक संगठन कम्युनिस्टों का और दूसरा है सावरकरवादियों का। ये रात-दिन कभी भी सच नहीं बोल सकते। आप गंभीरता से विचार करें कि आज तक मैंने एक भी कम्युनिस्ट ऐसा नहीं देखा जो कह दे कि कोई संघ का आदमी गांधी की भी प्रशंसा कर सकता है, गांधी मार्ग पर भी चल सकता है। कोई कम्युनिस्ट अपने मुंह से यह नहीं कह सकता। अगर कहेगा, तो उसे माना जाएगा कि वह कम्युनिस्ट नहीं है। संघ के विरुद्ध नफरत फैलाना और यह कहना कि संघ का कोई व्यक्ति गांधी मार्ग पर चलेगा, साम्यवादियों की नजर में गुनाह है। दूसरी ओर, एक ऐसी संस्था भी है जो सावरकर को मानने वालों की है, जो कहती है कि भारत का कोई भी मुसलमान देशभक्त नहीं हो सकता। यदि कोई व्यक्ति किसी मुसलमान को देशभक्त कहता है, तो वह वास्तव में या तो हिंदू नहीं है या देशभक्त नहीं है। सच बात यह है कि ये दोनों ही अव्वल दर्जे के झूठे हैं। इन्हें सत्य से कोई मतलब नहीं है। यही कारण है कि आज भारत में सावरकरवादी और कम्युनिस्ट दोनों ही अविश्वसनीय हो गए हैं। यह अलग बात है कि कम्युनिस्टों को नेहरू परिवार, मुसलमान और गांधीवादियों का समर्थन मिलता है, तथा सावरकरवादियों को भी संघ का समर्थन मिलता है। लेकिन जैसे-जैसे संघ, परिवार, मुसलमान और गांधी इन तीनों की दूरियाँ घट रही हैं, वैसे-वैसे कम्युनिस्ट और सावरकरवादियों की नींद उड़ रही है। अब भारत धार्मिक कट्टरवाद पर नहीं, बल्कि संघ के मार्ग पर चलेगा—जहां हिंसा को कोई स्थान नहीं है, जहां धार्मिक कट्टरवाद को कोई स्थान नहीं है। आप भारत में सावरकरवादी और कम्युनिस्टों की तानाशाही को सदा-के-लिए भूल चुके हैं। अब भारत की आम जनता लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता और गांधी मार्ग पर आगे बढ़ेगी। अब हमारे सामने केवल नरेंद्र मोदी और मोहन भागवत का मार्गदर्शन है, बाकी हम किसी को नहीं जानते।

ज्ञान यज्ञ परिवार के प्रकाश स्तंभ 'आदरणीय नरेंद्र सिंह सिरोही'

:ज्ञानेन्द्र आर्य

बुलंदशहर ज़िले के बनबोई गांव की पावन धरा पर जन्मे आदरणीय नरेंद्र रघुनाथ सिंह सिरोही हम सबके लिए केवल "नरेंद्र जी" हैं। वे मार्गदर्शक सामाजिक शोध संस्थान के कर्ताधर्ता, गहन विचारक, समाज विज्ञानी और दार्शनिक बजरंग मुनि जी के यहां आने वाले हर जिज्ञासु के साथी हैं, जिन्होंने अपनी वैचारिक यात्रा से अनेक पथिकों के जीवन को आलोकित किया है।

हम जैसे अनेक लोग, जिनके मन में समाज और व्यवस्था को लेकर जिज्ञासाओं के बादल घुमड़ते रहते हैं, जब आदरणीय बजरंग मुनि जी के सान्निध्य में पहुंचते हैं, तो वहां हमें नरेंद्र जी के व्यक्तित्व से भेंट का सौभाग्य मिलता है। मुनि जी के पास केवल चिंतक ही नहीं, बल्कि जीवन के बोझ तले दबे वे लोग भी आते हैं, जिनके मन में उत्तर खोजने की बेचैनी और समाज के लिए कुछ कर गुजरने का संकल्प होता है। ऐसे ही परिवेश में नरेंद्र जी एक दृढ़ मार्गदर्शक और विचारों के दीप स्तंभ बनकर उभरते हैं।

मेरा जीवन आर्य समाज, गायत्री परिवार और पतंजलि योगपीठ जैसे संगठनों से जुड़ा रहा, जहां अनेक समस्याओं के समाधान बताए जाते थे। किंतु मेरे भीतर के गहन प्रश्नों के उत्तर कहीं पूर्ण रूप से नहीं मिले। जब स्वयं मानव मस्तिष्क जैसी अद्भुत रचना जटिल है, तो उसकी सृष्टि समाज भी जटिल ही होगा। व्यवस्था और अव्यवस्था के इस महासागर में कभी-कभी उठने वाला प्रचंड तूफान सब कुछ डिगा देता है और पीछे छोड़ जाता है असंख्य प्रश्न। इन्हीं प्रश्नों के भंवर में नरेंद्र सिंह जी एक प्रकाश स्तंभ की भांति खड़े हैं, जो हर पथिक को किनारे तक पहुंचाने में सहायता करते हैं।

तीन भाइयों में सबसे छोटे और मां के दुलारे "कालू" ने मां के आदेश पर अपने पूरे परिवार को ही अपनी जिम्मेदारी मान लिया। उन्होंने अपना जीवन परिवार और समाज को समर्पित कर दिया। परिस्थितियां और उनका अपना स्वभाव – दोनों ने मिलकर उनके अविवाहित जीवन की नींव को स्थिर किया। इसी ठोस नींव पर उनकी वैचारिक विरासत का विराट भवन खड़ा हुआ। नरेंद्र जी मानते हैं कि वैचारिक लोगों की सबसे बड़ी दिक्कत यह है कि वे व्यवस्था पर गहन प्रश्न तो खड़े करते हैं, पर स्वयं व्यवस्था में सहजता से नहीं ठहर पाते। उनकी जिज्ञासा बनी-बनाई व्यवस्थाओं की चूलें हिला देती है। इसीलिए वे कहते हैं - "हमारे मस्तिष्क की खुजली को मिटाने की जो स्वतंत्रता और अवसर बजरंग मुनि जी के आश्रय में मिलता है, वह समूचे विश्व में कहीं और नहीं।"

आज हर संस्था अपने-अपने समाधान लेकर दुकान सजा चुकी है, जहां समस्याओं का निर्यात और समाधान का विक्रय होता है। किंतु वास्तविक बौद्धिक स्वतंत्रता केवल मुनि जी की बगिया में है। वहां जिज्ञासु बंदरों की तरह कूद-फांद कर सीखते हैं और बजरंग मुनि जी एक कुशल रिंग मास्टर की तरह हर किसी को शोधार्थी बना ही देते हैं। इसी वैचारिक सर्कस के सबसे दक्ष खिलाड़ी हैं आदरणीय नरेंद्र सिंह जी। वे समाज को सर्वोच्च मानते हैं और व्यवस्था को यथार्थ की कसौटी पर परखते हैं।

उनके व्यक्तित्व में बुद्धि और भावना का दुर्लभ समन्वय दिखाई देता है। मुनि जी के किसी भी आयोजन की घोषणा होते ही सबसे पहले आगे आकर जिम्मेदारी लेने वाले व्यक्ति नरेंद्र जी ही होते हैं। व्यवस्था का यथार्थ चित्रण कर उसे साहित्यिक कथा में पिरो देना उनकी विशेषता है। स्वयं नरेंद्र जी मानते हैं कि समाज-विज्ञान जैसे रूखे विषय को साहित्यिक भाषा में प्रस्तुत करने की क्षमता उन्हें इसी आश्रम में वाराणसी के विद्वान आचार्य पंकज के संरक्षण में मिली।

उनकी वैचारिक बेचैनी का एक प्रसंग उल्लेखनीय है। अंबिकापुर में एक बार जब वे मुनि जी के साथ रह रहे थे, तो आर्थिक प्रबंधन पर चर्चा हुई। विषय था – "संपत्ति कर" और "कृत्रिम ऊर्जा कर"। ये विचार उन्हें भीतर तक विचलित कर गए। उन्होंने लंबे समय तक मुनि जी से इन्हें समझा और बाद में अपने उपन्यास 'जीवन पथ' में कथा रूप में प्रस्तुत किया। यह उपन्यास पेन एंड पेपर अकादमी, गाजियाबाद से प्रकाशित हुआ, जिसमें व्यवस्था से जुड़े हर गंभीर प्रश्न का उत्तर कथा के माध्यम से दिया गया है। एक अन्य प्रसंग में, जब बजरंग मुनि जी भारत भ्रमण पर थे, तो उनके साथ नरेंद्र जी भी थे। चर्चा के दौरान प्रश्न उठा – "मौलिक अधिकार क्या हैं?" मुनि जी उत्तर देते रहे और नरेंद्र जी प्रश्न उठाते रहे। इसी संवाद का परिणाम था शोधग्रंथ 'मौलिक व्यवस्था का विचार' जिसे मार्गदर्शक सामाजिक शोध संस्थान ने प्रकाशित किया। यह ग्रंथ स्वतंत्रता, समानता और सहजीवन की दुरूहताओं को व्यवस्था की दृष्टि से देखने वाले हर शोधार्थी के लिए अमूल्य है।

बजरंग मुनि जी ने अपने विचार ऋषियों की भांति सूत्र रूप में रखे हैं। यदि उनके विचारों का संग्रह 'मार्गदर्शक सूत्र संहिता' वेद की संज्ञा पा सकता है, तो निस्संदेह आदरणीय नरेंद्र सिंह सिरोही जी उपनिषदकार कहे जा सकते हैं।

ज़ूम चर्चा कार्यक्रम का सारांश

दिनांक 2. 9. 2025 को आयोजित जूम चर्चा कार्यक्रम में 'अर्थव्यवस्था' विषय पर चर्चा हुई। चर्चा के दौरान अर्थव्यवस्था विशेषकर भारतीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ में विचार मंथन किया गया। चर्चा की शुरुआत ग्रामीण अर्थव्यवस्था और किसानो की आत्महत्या से हुई। किसानो की आत्महत्या का कारण है ग्रामीण अर्थव्यवस्था का कमजोर होना। कृषि और ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर कर लगाकर शहरो पर खर्च करना बंद करना होगा। इसके अलावा कृत्रिम उर्जा को श्रम का प्रतिस्पर्धी घोषित करना होगा। भारत में लगभग 6 लाख से अधिक गांव हैं। भारतीय आबादी का 60% से अधिक जनसंख्या गांव में निवास करती है। इस लिहाज से भी देखा जाए तो ग्रामीण और कृषि की उन्नति अत्यंत आवश्यक है।

विकसित देश निर्यात के मामले में अविकसित और विकासशील देशों से बहुत आगे हैं। उनकी मजबूत अर्थव्यवस्था का प्रमुख कारण निर्यात है। यही कारण है कि विकसित देश हर हालत में अपने निर्यात को बढ़ाना चाहते हैं। अगर वह ऐसा करने में असफल रहते हैं तो उनके यहां बेरोजगारी, मंदी और अर्थव्यवस्था में कमजोरी जैसी समस्या उत्पन्न हो जाएगी। हाल ही में अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप द्वारा छेड़ा गया टैरिफ वार इसी मानसिकता का परिणाम है। अमेरिका का भारत के कृषि क्षेत्र में प्रवेश की मांग अपने निर्यात को बढ़ाने का ही उपाय है। पश्चिम की अर्थव्यवस्था बहुराष्ट्रीय कंपनियों के चंगुल में है जबकि भारतीय अर्थव्यवस्था सरकार के अधीन है। सबसे पहले हमें सरकारी नियंत्रण से भारतीय अर्थव्यवस्था को मुक्त करना होगा तब हम बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बारे में विचार कर सकते हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था के मामले में स्पष्ट है कि निम्न वर्ग का योगदान न के बराबर है। यहां का निम्न वर्ग केवल सब्सिडी और लोक कल्याणकारी योजनाओं के सहारे पल रहा है। भारतीय अर्थव्यवस्था पर इन सब का भारी बोझ पड़ता है। देश का निम्न और उच्च मध्यम वर्ग सबसे ज्यादा कर देता है। इस तरह से भारतीय अर्थव्यवस्था में इस वर्ग का महत्वपूर्ण योगदान है। व्यक्ति अपनी बौद्धिक या श्रम शक्ति से प्राप्त लाभ को धन के अतिरिक्त न किसी और स्वरूप में संचित कर सकता है न रूपांतरित कर सकता है। इसके अतिरिक्त एक बात और ध्यान देने वाली है कि अगर धन का उपयोग न किया जाए तो लंबे वक्त बाद उसका नष्ट हो जाता है। धन की सार्थकता इसी बात में है कि उसका उपयोग होता रहे। चर्चा सार्थक एवं उद्देश्य पूर्ण रही। भारतीय अर्थव्यवस्था से संबंधित विभिन्न पहलुओं के बारे में जागरूकता और समझ बढ़ाने में चर्चा सफल रही।

अपने लक्ष्य की ओर धीरे-धीरे बढ़ती स्वराज्य यात्रा

प्रतापगढ़ नगर में युवाओं ने आगे बढ़कर ज्ञान केंद्र की जिम्मेदारी उठाने का संकल्प लिया। जौनपुर के विद्वान और आर्यसमाज के वरिष्ठ साथी अमित आर्य जी के साथ अनेक सक्रीय और समझ रखने वाले साथियों से सार्थक चर्चा हुआ। अमित आर्य जी ने ज्ञान केंद्र योजना को पूर्वी उत्तर प्रदेश के अन्य जिलों में स्थापित करने का आश्वासन दिया। दिनांक 3 सितंबर 2025 को ज्ञान यज्ञ परिवार की रामानुजगंज से चली यात्रा हरिभजन श्रीवास्तव जी के ज्ञान केंद्र पर पहुँची। यहाँ अनेक अधिवक्ता साथी, सामाजिक कार्यकर्ता और विचारकों के साथ स्वराज यात्रा के सदस्यों ने अपने विचार रखे।

ज्ञान यज्ञ परिवार के मुखिया मोहन बाबू ने बजरंग मुनि जी के "स्वराज नगर" रामानुजगंज के प्रयोगों और उसे 'भारत का एकमात्र अपराध-नियंत्रित नगर' बनाने के गौरवशाली इतिहास पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि जब तक शासन व्यवस्था में समाज की सहभागी भूमिका नहीं होगी, तब तक वह केवल शोषण का तंत्र बनी रहेगी। सहभागी लोकतंत्र का जो मॉडल लोक स्वराज के नाम से बजरंग मुनि जी ने सुझाया है, वही आने वाले समय में पूरी दुनिया के लिए आदर्श व्यवस्था का आधार बन सकता है।

प्रत्येक व्यक्ति स्वभावतः स्वतंत्र है और स्वशासन के सिद्धांतों के अनुसार जीवन जीने के लिए बना है। उसकी यह प्राकृतिक आकांक्षा है कि वह अपनी स्वतंत्रता के साथ रहे, लेकिन उसका अस्तित्व और उसके जीवन का हर कार्य समाज पर भी निर्भर करता है। इसी स्वतंत्रता और सहजीवन की जटिलता को संतुलित करने का कार्य व्यवस्था का है। स्वतंत्रता और सहजीवन की व्याख्या करते हुए ज्ञानेंद्र आर्य जी ने कहा कि कृत्रिम भ्रम और अव्यवस्था की आड़ में चल रहे वर्चस्व के खेल से बाहर निकलना केवल जन-जागरूकता के सामूहिक प्रयासों से संभव है। उन्होंने यह सवाल भी उठाया कि जनता और शासन तंत्र के बीच जो अनुबंध संविधान में दर्ज है, उसमें जनता की सहमति के बिना तंत्र को संशोधन का अधिकार कैसे मिल गया। क्या सिर्फ मतदान का अधिकार नागरिकों को उनके सभी अधिकारों से वंचित करने का औजार बन सकता है?

ज्ञानेंद्र आर्य जी ने आगे कहा कि विचारकों को हमेशा राजनेताओं ने धोखा दिया। स्वतंत्र भारत का सपना देखने वाले गांधी को नेहरू ने समाजवादी भारत देकर धोखा दिया। लोक स्वराज का सपना देखने वाले जयप्रकाश नारायण को परिवारवाद देकर निराश किया गया। जन लोकपाल का सपना देखने वाले अन्ना हज़ारे को भी राजनीति ने धोखा दिया। इसलिए इस बार परिवर्तन का प्रयास मां संस्थान जन-जागरूकता और लोक-शिक्षण के माध्यम से कर रहा है। ज्ञान केंद्र योजना विचार-संवाद और परिवर्तन के तीर्थ के रूप में भविष्य के भारत का निर्माण करेगी। बस्ती नगर के विद्वानों और चिंतकों के स्वागत, सम्मान और सहयोग से सभी स्वराज यात्रा के साथी अभिभूत हुए। यात्रा अब अयोध्या से होकर अंबेडकर नगर और सुल्तानपुर में होने वाली बैठकों की ओर बढ़ चली है। दिनांक 6 सितम्बर 2025 से भाई नरेन्द्र सिंह जी इस यात्रा को लेकर आगे बढ़ेंगे।